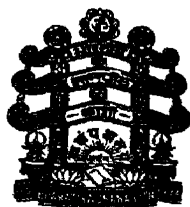
दो हज़ार वर्ष पुरानी कहानियाँ

जैन कथा-कहानियाँ



डॉ० जगदीशचन्द्र जैन

एम० ए०, पी-एच० डी०

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ काशी
दुर्गाकुण्ड, बनारस सिटी

प्रथम संस्करण	वीरनिर्वाणाब्द २४७३ दिसम्बर '४६	दो हज़ार प्रति

मूल्य ३) रुपया

मुद्रक
जे० के० शर्मा
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

अपनी प्रिय पत्नी तथा बच्चों

को

जिन्होंने इन कहानियों
को बार-बार सुनकर
मुझे उत्साहित
किया

निवेदन

जैन, बौद्ध, वैदिक--भारतीय संस्कृति की इन प्रमुख धाराओं का अवगाहन किये बिना अपनी आर्यपरम्परा का ऐतिहासिक विकासक्रम हम जान ही नहीं सकते। सभ्यता की इन्हीं तीन सरिताओं की त्रिवेणी का संगम हमारा वास्तविक तीर्थराज होगा। और, ज्ञानपीठ के साधकों का अनवरत यही प्रयत्न रहेगा कि हमारी मुक्ति का महामंदिर त्रिवेणी के उसी संगम पर बने; उसी संगम पर महामानव की प्राणप्रतिष्ठा हो।

लुप्त ग्रन्थों का उद्धार; अलभ्य और आवश्यक ग्रन्थों का सुलभीकरण; प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत, कन्नड़ और तामिल के जैन वाङ्मय का मूल और यथासम्भव अनुवाद रूप में प्रकाशन; त्रिपिटक (पालि) का नागरी लिपि में प्रकाशन; लुप्त और नष्ट समझे जानेवाले कतिपय ग्रन्थों का अपने मौलिक रूप में चीनी तथा तिब्बती से पुनरुद्धार—ज्ञानपीठ ऐसे प्रयत्नों में तो लगा हुआ है ही और आगे भी लगा रहेगा ही परन्तु इनके अतिरिक्त सर्वसाधारण के लाभ के लिए ज्ञानपीठ ने 'लोकोदय ग्रन्थमाला' का आरम्भ किया है। इस ग्रन्थमाला के अन्तर्गत हिन्दी में सरल सुलभ सुरुचिपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित की जाएँगी। जीवन के स्तर को ऊँचा उठाने वाली कृति के किसी भी रचयिता को ज्ञानपीठ प्रोत्साहित करेगा, वह केवल नामगति प्रसिद्धि के पीछे नहीं दौड़ेगा। काव्य, कथा, बृहत्कथा (उपन्यास), नाटक, इतिहास—पुस्तक चाहे किसी भी परिधि का हो परन्तु हो लोकोदयकारिणी।

प्रस्तुत पुस्तक, दो हज़ार वर्ष पुरानी कहानियाँ, जैन श्वेताम्बर आगमों में लिपिबद्ध आख्यायिकाओं का एक सुन्दर संकलन है। डा०

जगदीशचन्द्र जैन ने अपनी आन्वीक्षिकी बुद्धि से इसका सम्पादन किया है। इतने रोचक ढंग से कही गई इन कहानियों को हिन्दी पाठक बेहद पसन्द करेंगे, इसमें जरा भी शक नहीं। इन कहानियों से पता लगेगा कि हमारे पूर्वज कितने व्यवहार-कुशल थे और विषम से विषम परिस्थिति में वे अपना काम किस तरह निकाल लेते थे।

भारतीय ज्ञानपीठ
काशी
२।१२।४६

—व्यवस्थापक

भूमिका

मेरे मित्र डॉ० जगदीशचन्द्र जैन, एम० ए०, पी० एच० डी० ने प्राचीन जैन साहित्य से चुनकर मनोरंजक कहानियां संग्रह की हैं। यद्यपि ये कहानियां जैन परंपरा से ली गई हैं तथापि वे केवल जैन साहित्य तक ही सीमित नहीं हैं। ब्राह्मण और बौद्ध ग्रंथों में भी ये कहानियां किसी न किसी रूप में मिल जाती हैं। सच तो यह है कि ये चिरन्तन भारतीय चित्त की उपज हैं। कहानियों के पढ़ने वाले प्रत्येक सहृदय पाठक को लगेगा कि ये कहानियां किसी सम्प्रदाय विशेष की वस्तु नहीं हैं बल्कि इनके भीतर सार्वभौम मनुष्य का चित्र ही प्रकट हुआ हैं। बहुत से देशी और विदेशी विद्वान् मानते हैं कि संसार में आज जितनी लोकरंजक कहानियां प्रचलित हैं उनका मूल उद्गम भारतवर्ष ही है। यह बात सत्य भी हो सकती है और कुछ अतिरंजित भी हो सकती है, परन्तु इतना सत्य है कि भारतवर्ष से कहानियां संसार में गई हैं। कहानियों के द्वारा इस देश में नीति, भक्ति, धर्म और ज्ञान विज्ञान को प्रचारित करने का काम लिया गया है।

जैन साहित्य बहुत विशाल है। अधिकांश में वह धार्मिक साहित्य ही है। संस्कृत, प्राकृत, और अपभ्रंश भाषाओं में यह साहित्य लिखा गया है। ब्राह्मण और बौद्ध शास्त्रों की जितनी चर्चा हुई है अभी उतनी चर्चा इस साहित्य की नहीं हुई है। बहुत थोड़े पंडितों ने ही इस गहन साहित्य में प्रवेश करने का साहस किया है। डॉ० जगदीशचन्द्र जी ऐसे ही विद्वानों में से हैं। इन कहानियों को नाना स्थानों से संग्रह करने में उन्हें जो कठिन परिश्रम करना पड़ा होगा वह सहज ही समझा जा सकता है।

संगृहीत कहानियां बड़ी सरस हैं। डॉ० जैन ने इन कहानियों को बड़े सहज ढंग से लिखा है। इसलिए ये बहुत सहजपाठ्य हो गई हैं। इन कहानियों में कहानीपन की मात्रा इतनी अधिक है कि हज़ारों वर्ष से, न जाने कहने वालों ने इन्हें कितने ढंग से और कितनी प्रकार की भाषा में कहा है फिर भी इनका रस-बोध ज्यों का त्यों बना हुआ है। साधारणतः लोगों का विश्वास है कि जैन साहित्य बहुत नीरस है। इन कहानियों को चुन कर डॉ० जैन ने यह दिखा दिया है कि जैन आचार्य भी अपने गहन तत्त्व विचारों को सरस करके कहने में अपने ब्राह्मण और बौद्ध साथियों से किसी प्रकार पीछे नहीं रहे हैं। सही बात तो यह है कि जैन पंडितों ने अनेक कथा और प्रबंध की पुस्तकें बड़ी सहज भाषा में लिखी हैं। डॉ० जैन का यह प्रयत्न बहुत ही सुन्दर हुआ है। मुझे पूर्ण आशा है कि वे अन्यान्य साहित्यों से भी इस प्रकार की और सरस कहानियां संग्रह करेंगे और अपने पांडित्यपूर्ण निबंधों के साथ ही साथ ऐसी सहज और साधारण जनता के लिए सुलभ साहित्य का निर्माण बराबर करते रहेंगे।

शान्तिनिकेतन
१–११–४६

हजारी प्रसाद द्विवेदी

विषय-सूची

(३) धार्मिक कहानियाँ १६५



प्रास्ताविक

प्राचीन काल से ही कहानी-साहित्य का जीवन में बहुत ऊँचा स्थान रहा है। ऋग्वेद, ब्राह्मण, उपनि द्, महाभारत, रामायण आदि वैदिक ग्रन्थों में अनेक शिक्षाप्रद आख्यान उपलब्ध होते हैं, जिनके द्वारा मनुष्य-जीवन को ऊँचा उठाने का यत्न किया गया है। इन कथा-कहानियों का सब से समृद्ध कोष है बौद्धों की जातक कथायें। सीलोन, बर्मा, आदि प्रदेशों में ये कथायें इतनी लोकप्रिय हैं कि वहाँ के निवासी आज भी इन कथाओं को रात-रात भर बैठ कर बड़े चाव से सुनते हैं। इन कथाओं में बुद्ध के पूर्व जन्म की घटनाओं का वर्णन है, और इनके दृश्य साँची, भरहुत आदि के स्तूपों की दीवारों पर अंकित हैं, जिनका समय ईसा के पूर्व दूसरी शताब्दि माना जाता है। जातक कहानियाँ ईसा के पूर्व पाँचवीं शताब्दि के पहले से लेकर ईसा के बाद की प्रथम या द्वितीय शताब्दि तक रची गई हैं, तथा इनमें की अनेक कहानियाँ महाभारत और रामायण में विकसित रूप से पाई जाती हैं।[१]

प्राचीन काल में जो नाना लोक-कथायें भारतवर्ष में प्रचलित थीं, उन्हें ब्राह्मण, बौद्ध और जैनों ने अपने-अपने धर्मग्रन्थों में स्थान देकर अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया। उदाहरण के लिये, रोहिणी जातक (भाग १, नं० ४५) में रोहिणी नामक दासी की कथा आती है, जिसने अपनी माँ के सिर की मक्खियाँ उड़ाते हुए उसे मूसल से मार डाला। सीहचम्म जातक (भाग २, नं० १८९) में सिंहचर्म से आच्छादित गीदड़ की कथा आती है, जिसका शब्द सुनकर उसे किसान ने मार डाला।

---

[१] देखो भदन्त आनन्द कोसल्यायन, जातक (प्रथम खंड) की भूमिका, पृ० २४-२७

कूटिदूसक जातक (भाग ३, नं० ३२१) में सिंगिल पक्षी और बन्दर की कहानी आती है, जिसमें बन्दर ने सिंगिल पक्षी का घोंसला तोड़ कर नष्ट कर डाला। महाउम्मग्ग जातक (भाग ५, नं० ५४६) में कुमार महोसध की बुद्धिमत्ता सूचक अनेक आख्यान आते हैं। ये सब लोक-कथायें देश-विदेश में भिन्न-भिन्न रूप में पाई जाती हैं।

प्रस्तुत संग्रह में संकलित 'चावल के पाँच दाने', 'छोटे बड़े काम कैसे कर सकते हैं', 'भिखारी का सपना', 'बिना विचारे करने का फल', 'गरमागरम जामुन', 'चतुर रोहक' आदि प्राकृत कथायें कुछ रूपांतर के साथ सर्वसाधारण में प्रचलित हैं, जिनका किसी धर्मविशेष से कोई संबंध नहीं। ये लोक-कथायें भारतवर्ष में पंचतंत्र, हितोपदेश, कथासरित्सागर, शुकसप्तति, सिंहासन द्वात्रिंशिका, वेताल पंचविंशतिका आदि ग्रन्थों में पाई जाती हैं, तथा 'ईसप की कहानियाँ', 'अरेबियन नाइट्स की कहानियाँ', 'कलेला दमना की कहानी', आदि के रूप में ग्रीस, रोम, अरब, फ़ारस, अफ़्रीका आदि सुदूर देशों में भी पहुँची हैं। इन कथाओं का उद्गम स्थान साधारणतया भारतवर्ष माना जाता है, यद्यपि समय-समय पर अन्य देशों से भी देश-विदेश के यात्री बहुत-सी कथा-कहानियाँ अपने साथ लाते रहे।[१]

बौद्धों के पालि साहित्य की तरह जैनों का प्राकृत साहित्य भी कथा-कहानियों का विपुल भंडार है। बौद्ध भिक्षुओं की तरह जैन साधु भी अपने धर्म का प्रचार करने के लिये दूर-दूर देशों में विहार करते थे। बृहत्कल्पभाष्य में जनपद-परीक्षा प्रकरण में बताया है कि जैन साधु को

---

[१] देखो टी० डबल्यू० राइस डेविड्स की 'बुद्धिस्ट बर्थ स्टोरीज़' की भूमिका; विन्टरनीज़ की 'हिस्ट्री ऑफ़ इन्डियन लिटरेचर', भाग २, पृ० १२६, १३१, १५४; विन्टरनीज़ की 'सम प्रॉब्लम्स ऑफ़ इन्डियन लिटरेचर', पृ० ५६-८१

चाहिये कि वह आत्मशुद्धि के लिये तथा दूसरों को धर्म में स्थिर करने के लिये जनपद विहार करे, तथा जनपद-विहार करने वाले साधु को मगध, मालवा, महाराष्ट्र, लाट, कर्णाटक, द्रविड़, गौड, विदर्भ आदि देशों की लोक-भाषाओं में कुशल होना चाहिये, जिससे वह भिन्न-भिन्न देशों के लोगों को उनकी भाषा में उपदेश दे सके। उसे देश-देश के रीति-रिवाजों का और आचार-विचार का ज्ञान होना चाहिये जिससे उसे लोगों में हास्यभाजन न बनना पड़े (१-१२३६, १२२६-३०, १२३६)। ये श्रमण देश-देशांतर में परिभ्रमण करते हुए लोक-कथाओं द्वारा लोगों को सदाचार का उपदेश देते थे, जिससे कथा-साहित्य की पर्याप्त अभिवृद्धि हुई।

(२)

जैन साहित्य का प्राचीनतम भाग 'आगम' के नाम से कहा जाता है। ये आगम ४६ हैं—

१२ अंग :—आयारंग, सूयगडं, ठाणांग, समवायांग, भगवती, नायाधम्मकहा, उवासगदसा, अंतगडदसा, अनुत्तरोववाइयदसा, पण्हवागरण, विवागसुय, दिट्ठिवाय।

१२ उपांग :—ओवाइय, रायपसेणिय, जीवाभिगम, पन्नवणा, सूरियपन्नति, जंबुद्दीवपन्नति, चन्दपन्नति, निरयावलि, कप्पवडंसिया, पुप्फिया, पुप्फचूलिया, वण्हिदसा।

१० पइन्ना :—चउसरण, आउरपच्चक्खाण, भत्तपरिन्ना, संथर, तंदुलवेयालिय, चन्दविज्झय, देविंदत्थव, गणिविज्जा, महापच्चक्खाण, वीरत्थव।

६ छेदसूत्र :—निसीह, महानिसीह, ववहार, आचारदसा, कप्प (बृहत्कल्प), पंचकप्प।

४ मूलसूत्र :—उत्तरज्झयण, आवस्सय, दसवेयालिय, पिंडनिज्जुत्ति। नन्दि और अनुयोग।

ये आगम ग्रंथ काफ़ी प्राचीन हैं, तथा जो स्थान वैदिक साहित्य में वेद का है, और बौद्ध साहित्य में त्रिपिटक का है, वही स्थान जैन साहित्य में आगमों का है। इन आगम ग्रन्थों में महावीर के उपदेशों का तथा जैन संस्कृति से संबंध रखने वाली अनेक कथा-कहानियों का संकलन है।

जैन परंपरा के अनुसार महावीर निर्वाण के १६० वर्ष पश्चात् (लगभग ईसवी सन् ३०७ के पूर्व) मगध देश में बहुत भारी दुष्काल पड़ा; जिसके फलस्वरूप जैन भिक्षुओं को अन्यत्र विहार करना पड़ा। दुष्काल समाप्त हो जाने पर जैन श्रमण पाटलिपुत्र (पटना) में एकत्रित हुए और यहाँ खंड-खंड करके ग्यारह अंगों का संकलन किया गया। इस सम्मेलन को पाटलिपुत्र-वाचना के नाम से कहा जाता है। कुछ समय पश्चात् जब आगम-साहित्य का फिर विच्छेद होने लगा तो महावीर निर्वाण के ८२७ या ८४० वर्ष बाद (३६०-३७३ ईसवी सन् के पूर्व) जैन साधुओं के दूसरे सम्मेलन भरे—एक आर्यस्कंदिल की अध्यक्षता में मथुरा में और दूसरा नागार्जुन सूरि की अध्यक्षता में वलभि में। मथुरा के सम्मेलन को माथुरी-वाचना के नाम से कहा जाता है। तत्पश्चात् लगभग १५० वर्ष बाद, महावीर-निर्वाण के ९८० या ९९३ वर्ष बाद (५१३-५२६ ईसवी सन् के पूर्व) वलभि में देवर्धिगणि क्षमाश्रमण की अध्यक्षता में साधुओं का चौथा सम्मेलन हुआ, जिसमें सुव्यवस्थित रूप से आगमों का अंतिम बार संकलन किया गया। इसे वलभि-वाचना के नाम से कहा जाता है। वर्त्तमान आगम इसी संकलना का रूप है।

जैन आगमों की उक्त तीन संकलनाओं के इतिहास से पता लगता है कि समय-समय पर आगम-साहित्य को काफ़ी क्षति उठानी पड़ी, और यह साहित्य अपने मौलिक रूप में सुरक्षित नहीं रह सका। यही कारण मालूम होता है कि बौद्धों के विपुल साहित्य के मुक़ाबले में यह साहित्य बहुत न्यून है, तथा इस साहित्य में विकार आ जाने से ही संभवतः दिगम्बर सम्प्रदाय ने इसे मानना अस्वीकार कर दिया। जो कुछ भी हो, इस

समय तो जैनों के पास यही निधि अवशेष है जिसके सहारे जैन संस्कृति का ढाँचा तैयार किया जा सकता है। इन नष्ट-भ्रष्ट, छिन्न-विच्छिन्न आगम ग्रन्थों में अब भी ऐतिहासिक और अर्ध-ऐतिहासिक इतनी विपुल सामग्री है कि उसके आधार पर भारत के प्राचीन इतिहास का एक सुन्दर अध्याय लिखा जा सकता है।

ईसा के पूर्व लगभग चौथी शताब्दि से लगाकर ईसवी सन् पाँचवीं शताब्दि तक की भारतवर्ष की आर्थिक तथा सामाजिक दशा का चित्रण करने वाला यह साहित्य अनेक दृष्टियों से महत्व का है। उदाहरण के लिये, आयारंग, सूयगडं, उत्तरज्झयण, दसवेयालिय आदि आगम ग्रन्थों में जो जैन भिक्षुओं के आचार-विचारों का विस्तृत वर्णन है, वह बौद्धों के धम्मपद, सुत्तनिपात तथा महाभारत (शान्तिपर्व) आदि ग्रन्थों से बहुत अंशों में मेल खाता है, और डॉ० विन्टरनीज आदि विद्वानों के कथनानुसार श्रमण-काव्य (Ascetic Poetry) का प्रतीक है। भाषा और विषय आदि की दृष्टि से जैन आगमों का यह भाग सबसे प्राचीन मालूम होता है।

भगवती, कल्पसूत्र, ओवाइय, ठाणांग, निरयावलि आदि ग्रन्थों में श्रमण भगवान् महावीर, उनकी चर्या, उनके उपदेशों तथा तत्कालीन राजा, राजकुमार और उनके युद्ध आदि का विस्तृत वर्णन है, जिससे जैन इतिहास की लुप्तप्राय अनेक अनुश्रुतियों का पता लगता है। नायाधम्मकहा, उवासगदसा, अंतगडदसा, अनुत्तरोववाइयदसा, विवागसुय आदि ग्रन्थों में महावीर द्वारा कही हुई अनेक कथा-कहानियाँ तथा उनकी अनेक शिष्य-शिष्याओं का वर्णन है, जिससे जैन परंपरा की अनेक बातों का परिचय मिलता है। रायपसेणिय, जीवाभिगम, पन्नवणा आदि ग्रन्थों में वास्तु-शास्त्र, संगीत, वनस्पति आदि संबंधी अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों का वर्णन है जो प्रायः अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता।

छेदसूत्रों में साधुओं के आहार-विहार तथा प्रायश्चित्त आदि का विस्तृत वर्णन है जिसकी तुलना बौद्धों के विनयपिटक से की जा सकती

है। उदाहरण के लिये वृहत्कल्पसूत्र (१-५०) में बताया गया है कि जब महावीर साकेत (अयोध्या) में सुभूमिभाग नामक उद्यान में विहार करते थे तो उस समय उन्होंने अपने भिक्षु-भिक्षुणियों को साकेत के पूर्व में अंग-मगध तक, दक्षिण में कौशाम्बी तक, पश्चिम में थूणा (स्थानेश्वर) तक, तथा उत्तर में कुणाला (उत्तरकोसल) तक विहार करने की अनुमति दी। इससे पता लगता है कि आरम्भ में जैनधर्म का प्रचार सीमित था, तथा जैन श्रमण मगध और संयुक्तप्रान्त के कुछ हिस्सों को छोड़ कर अन्यत्र नहीं जा सकते थे। निस्सन्देह छेदसूत्रों का यह भाग उतना ही प्राचीन है जितने स्वयं महावीर।

तत्पश्चात् राजा कनिष्क के समकालीन मथुरा के जैन शिलालेखों में जो भिन्न-भिन्न गण, कुल और शाखाओं का उल्लेख है, वह भद्रबाहु के कल्पसूत्र में वर्णित गण, कुल और शाखाओं के साथ प्राय: मेल खाता है। इससे भी जैन आगम ग्रन्थों की प्रामाणिकता का पता चलता है। वस्तुत: इस समय तक जैन परंपरा में श्वेताम्बर और दिगम्बर का कोई भेद नहीं मालूम होता। जैन आगमों के विषय, भाषा आदि में जो पालि त्रिपिटक से समानता है, वह भी इस साहित्य की प्राचीनता को द्योतित करती है।

पालिसूत्रों की अट्ठकथाओं की तरह आगमों की भी अनेक टीका-टिप्पणियाँ, दीपिका, विवृति, विवरण, अवचूरि आदि लिखी गई हैं। इस साहित्य को सामान्यतया निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि और टीका इन चार विभागों में विभक्त किया जा सकता है; आगम को मिलाकर इसे पंचांगी के नाम से कहते हैं। आगम साहित्य की तरह यह साहित्य भी बहुत महत्त्व का है। इसमें आगमों के विषय का विस्तार से प्रतिपादन किया गया है। इस साहित्य में अनेक अनुश्रुतियाँ सुरक्षित हैं, जो ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। उदाहरण के लिये, वृहत्कल्पभाष्य, व्यवहार-भाष्य, निशीथ चूर्णि, आवश्यक चूर्णि, आवश्यकटीका, उत्तराध्ययनटीका आदि टीकाग्रन्थों में पुरातत्त्वसंबंधी विविध सामग्री भरी पड़ी है,

जिससे भारत के रीति-रिवाज, मेले-त्योहार, साधु-सम्प्रदाय, दुष्काल, बाढ़, चोर-लुटेरे, सार्थवाह, व्यापार के मार्ग, भोजन-वस्त्र, मकान, आभूषण आदि विविध विषयों पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है।

इसके अतिरिक्त, लोककथा और भाषा-शास्त्र की दृष्टि से भी यह साहित्य बहुत महत्त्व का है। डॉ० विन्टरनीज़ के शब्दों में, "जैन टीका-ग्रन्थों में भारतीय प्राचीन कथा-साहित्य के अनेक उज्ज्वल रत्न विद्यमान हैं, जो अन्यत्र उपलब्ध नहीं होते" (हिस्ट्री ऑफ़ इंडियन लिटरेचर, भाग २, पृ० ४८७)।

चूर्णि साहित्य में प्राकृत मिश्रित संस्कृत का उपयोग किया गया है, जो विशेषकर भाषाशास्त्र की दृष्टि से महत्त्व का है, और साथ ही यह उस महत्त्वपूर्ण काल का द्योतक है जब जैन विद्वान् प्राकृत का आश्रय छोड़कर संस्कृत भाषा की ओर बढ़े चले आ रहे थे। प्रस्तुत संग्रह की कहानियाँ अधिकतर इसी टीका-साहित्य में से ली गई हैं।

(३)

प्रस्तुत कहानी-संग्रह को तीन भागों में विभक्त किया गया है—लौकिक, ऐतिहासिक और धार्मिक। पहले विभाग में ३४, दूसरे में १७ और तीसरे में १३ कहानियाँ हैं।

इस संग्रह में विशेषकर उन्हीं कहानियों का संकलन किया गया है जो कला की दृष्टि से महत्त्व रखती हों।

लौकिक कथाओं में उन लोक-प्रचलित कथाओं का संग्रह किया गया है जो भारत में बहुत प्राचीन काल से चली आ रही हैं, और जिनका किसी सम्प्रदाय या धर्म से कोई संबंध नहीं। इस विभाग में तीन कहानियाँ नाया-धम्मकहा (ज्ञातृधर्मकथा) नामक छठे अंग में से ली गई हैं। जैसा नाम से विदित है, इस ग्रन्थ में ज्ञातृ अर्थात् ज्ञातृवंश में उत्पन्न ज्ञातृपुत्र महावीर की धर्म-कथायें संकलित हैं। इन कहानियों में 'चावल के पाँच दाने' नामक

कहानी कुछ रूपान्तर के साथ मूल सर्वास्तिवाद के विनयवस्तु (पृ० ६२), तथा बाइबिल (सेंट मैथ्यू की सुवार्त्ता २५; सेंट ल्यूक की सुवार्ता १६) में भी आती है। 'प्रलोभनों को जीतो' नामक कहानी काल्पनिक होने पर भी बहुत हृदयग्राही तथा शिक्षाप्रद है। इस प्रकार के लौकिक आख्यानों द्वारा भगवान् महावीर जन-समाज को संयम की कठोरता और अनासक्ति भाव का उपदेश देते थे। यह कथा कुछ रूपान्तर के साथ वलाहस्स जातक (नं० १९६) तथा दिव्यावदान में उपलब्ध होती है।

तत्पश्चात् पन्द्रह कहानियाँ भाष्य-साहित्य, विशेषकर बृहत्कल्प और व्यवहारभाष्य तथा उनकी टीकाओं में से ली गई हैं। ये दोनों भाष्य काफ़ी प्राचीन हैं, और भाषा तथा विषय सामग्री की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इन कहानियों में 'छोटे बड़े काम कैसे कर सकते हैं', 'भिखारी का सपना', 'बिना विचारे करने का फल', 'घंटीवाला गीदड़', 'कपट का फल', 'दूसरों को व्यर्थ न छेड़ो', 'गरमागरम जामुन', ये कहानियाँ लोक-कथाओं के रूप में सर्वसाधारण में प्रचलित हैं। इनमें 'छोटे बड़े काम कैसे कर सकते हैं' नामक कहानी कथासरित्सागर (पृ० ३११), शुकसप्तति (३१) तथा कुछ रूपान्तर के साथ निग्रोधमृग जातक में आती हैं। 'भिखारी का सपना', कुछ भिन्न रूप में धम्मपद अट्ठकथा १ (पृ० ३०२), पंचतंत्र, तथा तंत्राख्यायिक में आती है। 'दूसरों को व्यर्थ न छेड़ो', तथा 'घंटीवाला गीदड़' नामक कहानियाँ कुछ रूपान्तर के साथ क्रम से कूटिदूसक जातक (भाग ३, नं० ३२१) तथा दद्दभ जातक (भाग ३, नं० ३२२) में पाई जाती हैं। इन कहानियों में 'काम सच्ची उपासना है', 'खाओ और खाने दो', 'तीनों में कौन सब से अच्छा ?', तथा 'सच्चा भक्त कौन' ? नामक कहानियाँ सीधी-सादी होने पर भी हृदयस्पर्शी और गम्भीर हैं। तत्पश्चात् 'अन्धे नाचें बहरे गायें', 'अक़्ल बड़ी या भैंस' ?, 'मूर्ख बड़ा या विद्वान्' ?, 'वैद्यराज या यमराज ? नामक कहानियाँ हास्यरस की परिचायक हैं।

इनमें 'अंधे नाचें बहरे गायें' नामक कहानी का रूपांतर 'कल्याण-धम्म जातक' (भाग २, नं० १७१) में पाया जाता है।

इसके बाद तेरह कहानियाँ चूर्णि-साहित्य, विशेषकर आवश्यक चूर्णि और दशवैकालिक चूर्णियों में से ली गई हैं। आवश्यक चूर्णि का समय ईसा की सातवीं शताब्दि माना जाता है। इस साहित्य में प्राचीन काल से चली आने वाली अनेक अनुश्रुतियाँ और परम्परायें सुरक्षित हैं। इस भाग में 'लालच बुरी बलाय', 'ईर्ष्या मत करो', 'गीदड़ की राजनीति', 'इतना बड़ा लड्डू'!, 'दुर्बलों को न सताओ', 'पढ़ो और गुनो भी' नामक लोक-कहानियों में से बहुत-सी कहानियाँ पंचतंत्र, हितोपदेश आदि में मिलती हैं। इनमें 'लालच बुरी बलाय' नामक कहानी कथासरित्सागर (पृ० ३१८) तथा मूल सर्वास्तिवाद के विनयवस्तु (पृ० १२१-२) में आती है, और यहाँ लालची गीदड़ की उपमा भिक्षु से दी गई है। 'अपना अपना पुरुषार्थ' का कुछ भाग महाउम्मग्ग जातक (भाग ६, नं० ५४६) तथा मूल सर्वास्तिवाद के विनय-वस्तु (पृ० ६५) में पाया जाता है। 'पढ़ो और गुनो भी' का रूपान्तर मूल सर्वास्तिवाद के विनयवस्तु (पृ० २९-३०) में मिलता है, जहाँ चतुर शिष्य का काम राजा बिम्बसार का पुत्र जीवक करता है।

इस विभाग की कहानियाँ पहेली-साहित्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्व की हैं। उदाहरण के लिये, 'पंडित कौन ?', 'चतुराई का मूल्य', 'चतुर रोहक', 'राजा का न्याय' नामक कहानियाँ अत्यन्त मनोरंजक, और कल्पनाशक्ति की परिचायक हैं, तथा इन्हें कहानी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ भाग कहा जा सकता है। इन कहानियों में से अनेक कहानियाँ आजकल बीरबल और अकबर की कहानियों के नाम से प्रचलित हैं। 'चतुर रोहक' का कुछ भाग महाउम्मग्ग जातक में पाया जाता है, जहाँ रोहक का काम महोसध नामक मंत्री करता है। 'पंडित कौन' ? का कुछ भाग रूपान्तर के साथ शुकसप्तति (२८) में आता है। 'चतुराई

का मूल्य' अरेबियन नाइट्स की शहरज़ादे के ढंग की कहानी है। शहरज़ादे की तरह कनकमंजरी भी प्रति रात एक कहानी कहती है। 'राजा का न्याय' कुछ साधारण रूपान्तर के साथ गामणिचण्ड जातक (नं० २५७) में मिलती है। 'लड़के बन्दर हो गये' नामक कहानी कथा-सरित्सागर (पृ० ३१५), शुकसप्तति (३६) तथा कुछ रूपान्तर के साथ कूट-वाणिज जातक में पाई जाती है।

इस भाग की बाक़ी तीन कहानियाँ पिंडनिर्युक्ति तथा वसुदेवहिंडी से ली गई हैं। वसुदेवहिंडी यद्यपि आगमग्रन्थों में नहीं गर्भित होता, परन्तु प्राचीन ग्रन्थों में इसका उल्लेख होने से यह काफ़ी प्राचीन है।

दूसरा भाग ऐतिहासिक है। इस भाग में १७ कहानियाँ हैं, जिनमें बृहत्कल्पभाष्य की ३, निशीथ चूर्णि की १ और उत्तराध्ययनटीका की २ को छोड़कर बाक़ी कहानियाँ आवश्यक चूर्णि से ली गई हैं। निशीथ चूर्णि की हस्तलिखित प्रति का उपयोग किया गया है। उत्तराध्ययन ीका की बहुत सी कहानियों का Hindu Tales के नाम से जे० जे० मेयर ने अंग्रेज़ी में अनुवाद किया है।

इन कहानियों का संकलन यथासम्भव ऐतिहासिक क्रम से किया गया है। महावीर और बुद्ध के समकालीन अनेक राजा-रानियों का उल्लेख प्राकृत और पालि साहित्य में आता है। जैनों ने इन राजाओं को जैन कहा है, बौद्धों ने बौद्ध। वस्तुत: देखा जाय तो राजाओं का कोई खास धर्म नहीं होता—वे प्रत्येक महान् पुरुष की उपासना करने में अपना धर्म समझते हैं। इसके अतिरिक्त प्राचीन काल में साम्प्रदायिकता का ज़ोर नहीं था जैसा हम उत्तरकाल में पाते हैं। इसीलिए हम देखते हैं कि उस समय जो साधु-सन्त नगरी में पधारते थे, उनके आगमन को अपना अहोभाग्य समझ कर नगरी के सब लोग उनके दर्शनार्थ जाते थे। अतएव श्रेणिक (बिंबिसार), कूणिक (अजातशत्रु), चन्द्रगुप्त आदि

राजाओं के विषय में निश्चित रूप से यह कहना कठिन है, कि वे महावीर के विशेष अनुयायी थे या बुद्ध के।

जैन ग्रन्थों के अनुसार श्रेणिक और उनकी पटरानी चेलना श्रमण भगवान् महावीर के परम उपासक थे। कूणिक चेलना का पुत्र था, जो अपने पिता को मारकर गद्दी पर बैठा था। अभयकुमार श्रेणिक का दूसरा पुत्र था, जो बड़ा कुशल राजमंत्री था। अभयकुमार की बुद्धिमत्ता की अनेक कहानियाँ जैन ग्रन्थों में आती हैं। जैन परम्परा के अनुसार अभयकुमार ने श्रेणिक की मौजूदगी में महावीर के पास जाकर दीक्षा ली थी। बौद्धों के मूल सर्वास्तिवाद के विनयवस्तु (पृ० १२-३) में भी अजातशत्रु को वैदेही चेला का पुत्र बताया गया है। चेला वैशाली के सिंह सेनापति की पुत्री थी और राजा बिम्बिसार इसे भगा कर ले गया था। बौद्धों की दूसरी परम्परा के अनुसार बिम्बिसार की रानी का नाम कोसलदेवी था, जो राजा प्रसेनजित् की बहन थी। पितृघातक अजातशत्रु उसी का पुत्र था जिसका विस्तृत वर्णन दीघनिकाय की अट्ठकथा में आता है। विनयवस्तु (पृ० २९-३२) के अनुसार अभय राजकुमार आम्रपाली गणिका का पुत्र था जो राजा बिम्बिसार से पैदा हुआ था। बौद्धों की दूसरी परम्परा के अनुसार अभय राजकुमार उज्जयिनी की पद्मावती नामक गणिका का पुत्र था। बौद्धों के अनुसार पहले वह महावीर का भक्त था, परन्तु बुद्ध का उपदेश सुनकर उनका अनुयायी हो गया था।

श्रेणिक के समकालीन राजाओं में जैन ग्रन्थों में चम्पा के राजा दधिवाहन, कौशाम्बी के राजा उदयन, उज्जयिनी के राजा प्रद्योत और वीतिभय के राजा उद्रायण का उल्लेख मिलता है। इन राजाओं के साथ वैशाली के राजा चेटक ने, जो भगवान् महावीर का मामा था, अपनी कन्याओं का विवाह किया था। उज्जयिनी का राजा बहुत क्रूर माना जाता था, इसलिये वह चंड प्रद्योत के नाम से प्रख्यात था। उसने श्रेणिक, शतानीक, उद्रायण आदि अनेक राजाओं के साथ युद्ध किये थे। कूणिक और चेटक

के युद्ध का विस्तृत वर्णन जैन ग्रन्थों में आता है। बौद्ध ग्रन्थों में प्रद्योत, उदयन और उद्रायण नामक राजाओं के उल्लेख मिलते हैं। प्रद्योत की कन्या वासवदत्ता का उदयन द्वारा भगाकर ले जाने का उल्लेख जैन, बौद्ध और ब्राह्मण ग्रन्थों में आता है।

तत्पश्चात् नन्द राजाओं का ज़िक्र आता है। जैन परम्परा के अनुसार कूणिक का पुत्र उदायी बिना किसी उत्तराधिकारी के मर गया। उस समय एक नाई पाटलिपुत्र के सिंहासन पर बैठा, और यह प्रथम नन्द कहलाया। नन्दों का नाश कर चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को किस प्रकार पाटलिपुत्र के सिंहासन पर बैठाया इसका विस्तृत वर्णन आवश्यक चूर्णि तथा बौद्धों की महावंस टीका में आता है।

मौर्यवंश का वर्णन करते हुए बृहत्कल्पसूत्रभाष्य (१. ३२७८) में कहा गया है कि जैसे जौ बीच में मोटा और दोनों ओर से पतला होता है, उसी प्रकार मौर्यवंश के विषय में समझना चाहिये। मौर्यवंश का प्रथम राजा चन्द्रगुप्त बल-वाहन आदि राजविभूति में हीन था, उससे बड़ा बिन्दुसार, उससे बड़ा राजा अशोक तथा सब से बड़ा राजा सम्प्रति था। सम्प्रति के पश्चात् मौर्यवंश की दिन पर दिन क्षति होती गई। जैन ग्रन्थों में अवंति-पति सम्प्रति का अत्यन्त सन्मान के साथ उल्लेख करते हुए उसे जैन श्रमणसंघ का महान् प्रभावक बताया गया है। जैसा कहा जा चुका है, सम्प्रति राजा के पूर्व जैनधर्म का प्रचार मगध और संयुक्तप्रान्त के कुछ भाग तक ही सीमित था, परन्तु सम्प्रति ने आन्ध्र, द्रविड़, महाराष्ट्र, कुर्ग आदि देशों में इसका प्रचार किया। वस्तुतः जो स्थान बौद्ध धर्म में अशोक को प्राप्त है वही सम्प्रति को जैनधर्म में समझना चाहिये।

कुणाल के अन्धे होने की कथा दिव्यावदान आदि बौद्ध ग्रन्थों में भी आती है, जहाँ उसकी सौतेली माँ का नाम तिष्यरक्षिता बताया गया है।

तत्पश्चात् उज्जयिनी के राजा गर्दभिल्ल का ज़िक्र आता है। जैन परम्परा के अनुसार, ईरान के शाहों ने गर्दभिल्ल को हराकर उज्जयिनी में अपना राज्य क़ायम किया। उसके बाद गर्दभिल्ल के पुत्र विक्रमादित्य ने शाहों को हराकर फिर से उज्जयिनी का राज्य प्राप्त किया। इसी समय से विक्रम संवत् का आरम्भ हुआ माना जाता है। ईरान के दूसरे बादशाह नभोवाहन या नहपान का उल्लेख जैन ग्रन्थों में आता है। नभोवाहन भरुयकच्छ (भड़ौंच) में राज्य करता था, और उसके पास अटूट धन था। नभोवाहन और पइट्ठान (पैठन) के राजा सालिवाहन (शातवाहन) के युद्ध का उल्लेख जैन ग्रन्थों में आता है, जिसमें अन्त में सालिवाहन की विजय हुई। सालिवाहन के मंत्री के अपने राजा को छोड़कर नभोवाहन से जा मिलने की तुलना अजातशत्रु के मंत्री वर्षकार के लिच्छवियों से जा मिलने के साथ की जा सकती है।

इस भाग में अन्त की दो कहानियाँ राजा मूलदेव की हैं। मूलदेव का उल्लेख कामशास्त्र में आता है। भारतीय साहित्य में उसे स्तेय-शास्त्र-प्रवर्तक माना गया है।

इन कहानियों से प्राचीन भारत की सामाजिक अवस्था पर भी काफ़ी प्रकाश पड़ता है। उदाहरण के लिये, उस समय के सामन्त लोग बहुत विलासी होते थे, बहुपत्नीत्व प्रथा बहुत ज़ोरों पर थी, कूटनीति के दाँव-पेंच खूब काम में लाये जाते थे, बड़े-बड़े युद्ध होते थे, राजा की आज्ञा न पालन करने पर कठोर दंड दिया जाता था, क़ैदियों को बन्दीगृह में कड़ी यातनायें भोगनी पड़ती थीं, सामंत लोग छोटी-छोटी बातों पर लड़ बैठते थे। इतना होते हुए भी राजा यथासम्भव क्षत्रियधर्म का पालन करते थे, शरणागत की रक्षा करना परम धर्म समझते थे, और निःशस्त्र पर शस्त्र उठाना क्षत्रियत्व का अपमान समझते थे। राजा और सेठ-साहुकार अतुल धन-सम्पत्ति के स्वामी होते थे। साधारणतया लोग

खुशहाल थे, परन्तु दरिद्रता का सर्वथा अभाव नहीं था। दासत्वप्रथा बहुत जोरों पर थी, और ऋण आदि न चुका सकने के कारण दास-वृत्ति अंगीकार करनी पड़ती थी। स्त्रियों की दशा बहुत अच्छी नहीं थी, यद्यपि वे मेले-उत्सव आदि के अवसरों पर स्वतन्त्रता-पूर्वक बाहर आ-जा सकती थीं। वेश्यायें नगरी की शोभा मानी जाती थीं, और राजा तक उनके सत्यबल की प्रशंसा करता था। व्यापार बहुत तरक्की पर था, और व्यापारी लोग दूर-दूर तक अपना माल लेकर बेचने जाते थे।

तीसरे धार्मिक विभाग में १३ कहानियाँ हैं, जिनमें १ कहानी अंत-गडदसा, १ व्यवहारभाष्य, २ वृहत्कल्पभाष्य, १ सूत्रकृतांग चूर्णि, ३ आवश्यक चूर्णि तथा ५ उत्तराध्ययनटीका में से ली गई हैं। ये कथायें प्रायः महावीर के प्रवचन का प्रभाव बताने के लिये लिखी गई हैं, जिनका अन्त उनके धर्म की दीक्षा से होता है।

अर्जुनक माली की कहानी से पता लगता है कि आज से अढ़ाई हजार वर्ष पहले भी लोग यक्ष आदि देवी-देवताओं की मूर्ति को निष्प्राण समझते थे। रोहिणेय चोर की कहानी सुन्दर है। इसी प्रकार के चोर-डाकुओं को अपने धर्म में दीक्षित कर महावीर और बुद्ध अपने धर्म का प्रचार करते थे। 'शंब का साहस' नामक कहानी में युवक-स्वभाव का सुन्दर चित्रण है। आर्द्रकुमार की कहानी से पता लगता है कि कठिन प्रसंग उपस्थित होने पर बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी संयम से डिग जाते थे। इसी प्रकार की एक कथा धम्मपद अट्ठकथा (पृ० ३०६-७) में आती है। वल्कलचीरी की कथा कुछ रूपान्तर के साथ बौद्धों की उदान अट्ठकथा में आती है, जहाँ वल्कल-चीरी को बुद्ध का भक्त बताया है। 'धूर्त वणिक्' की कहानी धर्मप्रचार की दृष्टि से मनोरंजक है। इसका रूपान्तर शुकसप्तति (६१) में पाया जाता है।

राजा करकंडू की कथा बौद्ध जातकों में भी आती है, जहाँ करकण्डू, दुर्मुख, नमि और नग्गजित् की गणना प्रत्येक बुद्धों में की गई है। दीपायन ऋषि की कथा कण्हदीपायन जातक (भाग ४, नं० ४४४) में आती है। 'तृष्णा की विचित्रता' प्राकृत साहित्य का एक सुन्दर उपाख्यान कहा जा सकता है। मुनि चित्र और सम्भूत की कहानी से पता लगता है कि बुद्ध और महावीर के जातिवाद के विरुद्ध घोर प्रचार करने पर भी समाज में शूद्र-अशूद्र की भावना का नाश नहीं हुआ था। इस कहानी से स्पष्ट है कि महावीर के धर्म में जाति-पाँति के लिये कोई स्थान नहीं था। 'गंगा की उत्पत्ति' से मालूम होता है कि जैन और बौद्ध ब्राह्मणों के पौराणिक आख्यानों को अपना कर किस तरह लोकधर्म के साथ आगे बढ़े थे। इस कहानी के कुछ भाग की तुलना थेरीगाथा की अट्ठकथा (पृ० १७४ आदि) की कहानी से की जा सकती है। राजीमती की दृढ़ता प्राकृत साहित्यका एक रत्न है जो स्त्री जाति के चरित्र की उज्वलता का द्योतक है। ऋग्वेद (१०. १०) में यम और यमी के संवाद रूप में इसी प्रकार का एक आख्यान मिलता है।

इस संग्रह की प्रायः सभी कहानियाँ सुन्दर और प्रभावोत्पादक हैं, तथा इनकी शैली सरल होने पर भी ये बहुत मनोरंजक और बुद्धिवर्धक हैं। ये कहानियाँ सार्वभौमिक हैं, तथा साम्प्रदायिकता और संकुचितता से दूर हैं। इससे पता लगता है कि प्रत्येक धर्म मूल में कितना असाम्प्रदायिक होता है, और धीरे-धीरे वह विश्वकल्याण की भावना से दूर होकर किस प्रकार साम्प्रदायिक तथा संकुचित बन जाता है। महावीर और बुद्ध इसी प्रकार के आख्यानों द्वारा बाल, वृद्ध, स्त्री तथा अनपढ़ लोगों को सदाचरण, संयम, समभाव आदि संसार में शान्ति फैलाने वाले सिद्धान्तों का उपदेश देते थे। सच पूछा जाय तो यही भारतीय संस्कृति का मूल मन्त्र था।

यदि इन कहानियों को पढ़कर पाठकों के हृदय में भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति के प्रति थोड़ा भी श्रद्धा और आदर का भाव जागृत हुआ तो इन पंक्तियों का लेखक अपने परिश्रम को सफल समझेगा।

२८, शिवाजी पार्क
बंबई २८
१५-६-४५

जगदीशचन्द्र जैन

(१) लौकिक कहानियाँ

१—लाचारी का विचार क्या

धन्य और विजय चोर की कहानी

राजगृह नगर में धन्य नामक एक व्यापारी (सार्थवाह) रहता था। वह बहुत समृद्ध तथा अठारह श्रेणियों (सेणिप्पसेणि)[१] का सलाहकार था। भद्रा नाम की उसकी एक सुन्दर स्त्री थी। भद्रा के अतुल धन-सम्पत्ति होते हुए भी उसके कोई सन्तान न थी, जिससे वह अत्यन्त दुखी थी। सन्तान के लिये भद्रा ने अनेक प्रयत्न किये, नाग, भूत, यक्ष, इन्द्र, स्कन्द, शिव, वैश्रवण (कुबेर) आदि अनेक देवी-देवताओं की मनौती की, अनेक व्रत-उपवास किये, परन्तु कोई नतीजा न हुआ।

सन्तोष और सेवा का फल कभी व्यर्थ नहीं जाता। आखिर देवी-देवता प्रसन्न हुए और कुछ समय पश्चात् भद्रा ने गर्भ धारण किया। यथासमय पुत्रजन्म हुआ। पुत्र पाकर भद्रा बड़ी प्रसन्न हुई। उसके घर बड़ी खुशियाँ मनाई गईं। शिशु के जातकर्म आदि संस्कार सम्पन्न हुए और देवकृपा से उत्पन्न होने के कारण उसका नाम देवदत्त रक्खा गया।

धन्य के पंथक नाम का एक सुन्दर और हृष्ट-पुष्ट नौकर (दासचेट) था, जो बच्चों के खिलाने में बड़ा कुशल था। भद्रा अपने पुत्र को नहलाती-धुलाती, नजर से बचाने के लिये मषि आदि का तिलक करती, और अलंकार आभूषण आदि से सजाकर उसे पंथक को सौंप देती।

एक दिन पंथक देवदत्त को राजमार्ग पर अन्य बालक-बालिकाओं के साथ खिला रहा था, तने में वहाँ विजय नामक एक चोर आया,

---

[१] श्रेणी एक प्रकार की 'यूनियन' होती थी। बौद्ध जातकों में बढ़ई, लुहार, चमार तथा चित्रकार इन चार श्रेणियों के नाम आते हैं।

और पंथक को अन्य किसी काम में लगा देख, झट से देवदत्त को गोदी में उठाकर अपने वस्त्र में छिपा लिया और शीघ्रता से राजगृह से निकलकर जंगल की ओर भाग गया। विजय एक जीर्ण-शीर्ण उद्यान में प ँचा। बालक के आभूषण उतार कर, उसे मारकर कुएँ में फेंक दिया और स्वयं जंगल में छिपकर बैठ गया।

इधर पंथक ने एक क्षणभर बाद जब उधर देखा तो बच्चा ग़ायब था। उसने इधर-उधर बहुत देखा-भाला, परन्तु जब कहीं उसका पता न लगा तो वह रोता-पीटता अपने मालिक के घर पहुँचा और उसके पाँव छूकर सब हाल कह सुनाया। धन्य यह दारुण समाचार सुनते ही एकदम बेहोश होकर गिर पड़ा। होश में आने पर उसने चारों ओर अपने बच्चे की छानबीन शुरू की, पर कहीं उसका पता न चला।

धन्य बहुत निराश हुआ। वह बहुत सा भेंट का सामान लेकर पुलिस (नगर-रक्षक) के पास पहुँचा। पुलिस ने बच्चे का पता लगाने के लिये तैयारियाँ शुरू कर दीं। पुलिस के कर्मचारियों ने कवच पहने, धनुष-बाण आदि हथियार सम्हाले और बच्चे की खोज में चल पड़े।

ढूंढ़ते-ढूँढ़ते वे लोग एक जीर्ण उद्यान में पहुँचे और वहाँ उन्होंने एक पुराने कुएँ में बच्चे की लाश को पड़ा पाया। पुलिस ने लाश कुँए से निकाल कर धन्य को दे दी, और पुलिस के कर्मचारी चोर के पदचिह्नों का अनुगमन करते करते मालुका[1] वन में पहुँचे।

विजय चोर यहाँ छिपा बैठा था। पुलिस ने चोर को पकड़ कर उसे लात और घूँसों से खूब पीटा और उसकी मुश्कें बाँध लीं। चोर के पास से जो आभरण मिले उन्हें उसके गले में पहनाया, और उसे नगर में ले जाकर सड़कों पर घुमाया। तत्पश्चात् कोड़े, बेंत आदि से उसे पीटा और उसके ऊपर धूल-राख और कूड़ा-कचरा

---

[1] एक प्रकार का वृक्ष।

फेंक-फेंक कर घोषणा की कि यह मांसलोलुपी, बाल-घातक विजय नामक दुष्ट चोर अपने किये का फल भोग रहा है; जो अन्य कोई राजा, राजपुत्र, मंत्री, मंत्रीपुत्र इस तरह का घोर पाप करेगा, उसका भी यही हाल होगा।

तत्पश्चात् विजय को कारागृह में ले जाकर उसे एक बड़े काठ (हडिबंधन) में बाँध दिया गया। वहाँ उसे सुबह, दुपहर और शाम को कोड़ों से पीटा जाता, और उसका खाना-पीना सब बन्द कर दिया गया।

संयोगवश कुछ समय पश्चात् धन्य से कुछ साधारण सा अपराध हो गया और राजा ने उसे पकड़वा कर जेल में डाल दिया। जेल में उसे और विजय चोर दोनों को एक साथ काठ में बाँधा गया।

धन्य की स्त्री भद्रा अपने पति के लिये सुन्दर-सुन्दर भोजन तैयार करती, उसे डब्बे (भोयणपिडग=tiffin carrier) में बन्द कर ऊपर से मोहर लगाती, लोटे में सुगंधित जल भरती और उसे पंथक के हाथ जेल में भेजती। पंथक जेल में जाकर पहले जल से अपने स्वामी के हाथ धुलवाता, और फिर डब्बा खोल कर भोजन परोसता, और उसे भोजन खिला कर घर लौट आता।

धन्य का भोजन देखकर विजय के मुँह में पानी भर आता, और वह उससे कहता—"हे देवानुप्रिय, मुझे भी अपने भोजन में से थोड़ा खाने को दो, मैं बहुत भूखा हूँ।" परन्तु धन्य उत्तर देता—"विजय, मैं इस भोजन को कौओं और कुत्तों को खिला दूंगा, कूड़ी पर फेंक दूंगा, परन्तु तुम जैसे पुत्रघातक अपकारी मनुष्य को कभी न दूंगा।"

एक बार भोजन करने के पश्चात् धन्य को शौच जाने की हाजत हुई। उसने विजय से कहा—"विजय, चलो, हम दोनों एकान्त स्थान में चलें; मुझे शौच जाना है।" विजय ने उत्तर दिया—"हे देवानुप्रिय, तुम तो खूब डटकर बढ़िया-बढ़िया माल उड़ाते हो, अतएव तुम्हारा शौच

जाना स्वाभाविक है, परन्तु जरा मुझे देखो, कोड़ों और बेतों की मार से तथा भोजन-पानी न मिलने से मेरी क्या दशा हो गई है ! मुझे शौच जाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। अतएव तुम अकेले बड़ी खुशी से जहाँ जाना चाहो जा सकते हो, मैं तुम्हारे साथ न चलूंगा।"

विजय का यह उत्तर सुनकर धन्य चुप हो गया। परन्तु उसकी हाजत बढ़ती जाती थी। उसने फिर विजय से साथ चलने के लिये कहा। विजय ने उत्तर दिया, "यदि तुम भोजन का बँटवारा करने को तैयार हो तो मैं तुम्हारे साथ चल सकता हूँ, अन्यथा नहीं।" विवश होकर धन्य अपने भोजन में से कुछ हिस्सा विजय को देने के लिये राजी हो गया और अब रोज विजय को भोजन मिलने लगा।

पंथक ने यह बात भद्रा से आकर कही। भद्रा को बहुत बुरा लगा।

कुछ समय पश्चात् अपने संबंधियों की सिफ़ारिश से तथा अपने धन के जोर से धन्य जेल से छूट गया। जेल से छूटकर वह सीधा नाई की दुकान (अलंकारियसभा=Saloon) पर पहुँचा, हजामत बनवाई, पोखर में स्नान किया, गृह-देवताओं की पूजा (बलिकर्म) की और तत्पश्चात् अपने घर की ओर चला। नगर के सेठ, सार्थवाह आदि ने धन्य का बड़ा स्वागत किया और कुशल-समाचार पूछे। धन्य अपने घर पहुँचकर अपने माता-पिता, भाई, बहन आदि सगे-संबंधियों से मिला। उन्हें बड़ा आनन्द हुआ, और आनन्दातिरेक से गद्‌गद हो गले मिलकर उन्होंने खूब रुदन किया।

धन्य घर के सब लोगों से मिला, परन्तु उसे कहीं भद्रा दिखाई न दी। वह अन्दर गया तो उसने देखा कि वह उदास हुई बैठी है। धन्य ने भद्रा से पूछा—"प्रिये, क्या बात है ? क्या तुम्हें मेरे जेल से छूटकर आने की खुशी नहीं ?" भद्रा ने कहा—"स्वामिन्, मुझे अच्छी तरह मालूम है कि तुम अपने पुत्रघातक दुष्ट चोर को अपने डब्बे में से भोजन खिलाकर पालते थे ?"

धन्य ने भद्रा को सब बातें बताईं कि उसने विवश होकर किस कठिन परिस्थिति में विजय को भोजन देना स्वीकार किया था। भद्रा सब बातें समझ गई। उसने अपने पति से क्षमा माँगी और वह फ़ौरन उठकर उससे गले मिलकर खूब रोई।

२—चावल के पाँच दाने

धन्य और उसकी पतोहुओं की कहानी

राजगृह में धन्य नाम का एक समृद्ध और बुद्धिमान व्यापारी रहता था। उसके चार पतोहुएँ थीं, जिनके नाम थे उज्झिका, भोगवती, रक्षिका और रोहिणी।

एक दिन धन्य ने सोचा—"मैं अपने कुटुंब में सब से बड़ा हूँ और सब लोग मेरी बात मानते हैं; ऐसी हालत में यदि मैं कहीं चला जाऊँ, बीमार हो जाऊँ, किसी कारण से कामकाज की देखभाल न कर सकूं, परदेश चला जाऊँ या कदाचित् मर जाऊँ तो मेरे बाद मेरे कुटुंब का क्या होगा? कौन उसे सलाह देगा, और कौन मार्ग-प्रदर्शन करेगा?" यह सोचकर धन्य ने भोजन की विपुल सामग्री तैयार कराई, और अपने सगे-संबंधियों को निमंत्रित किया।

भोजन के पश्चात् जब सब लोग गपशप कर रहे थे तो धन्य ने अपनी पतोहुओं को बुलाया और उनसे कहा—"देखो, बेटियो! मैं तुममें से प्रत्येक को धान के पाँच-पाँच दाने देता हूँ; तुम इन्हें सँभालकर रखना और जब मैं माँगू मुझे लौटा देना।" चारों पतोहुओं ने कहा—"पिता जी की जो आज्ञा", और वे धान के दाने लेकर चली गईं।

एक दिन सब से बड़ी पतोहू उज्झिका ने सोचा—"मेरे ससुर के कोठार में मनों धान भरे पड़े हैं; जब वे माँगेंगे मैं कोठार में से लाकर उन्हें दे दूंगी।" यह सोचकर उज्झिका ने उन दानों को उठाकर फेंक दिया और अपने काम में लग गई।

दूसरी पतोहू भोगवती ने भी यही सोचा कि मेरे ससुर के कोठार

में मनों धान भरे हैं। बस वह उन दानों का छिलका उतारकर उन्हें मुँह में रखकर खा गई।

तीसरी पतोहू रक्षिका ने सोचा कि ससुर जी ने बहुत से लोगों को बुलाकर उनके समक्ष हम लोगों को जो धान के दाने दिये हैं, और उन्हें सुरक्षित रखने को कहा है, अवश्य ही इसमें कोई रहस्य होना चाहिये। उसने उन दानों को एक साफ़ कपड़े में बाँधकर अपनी रत्नों की पिटारी में रख दिया, और उसे अपने सिरहाने रखकर उसकी सुबह-शाम चौकसी करने लगी।

चौथी पतोहू रोहिणी के मन में भी यही विचार उठा कि अवश्य ही ससुर जी ने कुछ सोचकर हम लोगों को धान के दाने दिये हैं। उसने अपने नौकरों को बुलवाया और कहा, "जब खूब ज़ोर की वर्षा हो तो छोटी-छोटी क्यारियाँ बनाकर इन धानों को खेत में बो दो। तत्पश्चात् इन्हें दो-तीन बार करके एक स्थान से दूसरे स्थान पर रोपो, और इनके चारों ओर बाड़ लगाकर इनकी रखवाली करो।"

नौकरों ने रोहिणी के आदेश का यथावत् पालन किया, और जब हरे-हरे धान पककर पीले पड़ गये, उन्हें तीक्ष्ण दँतिया से काट लिया। तत्पश्चात् धानों को हाथ से मला और उन्हें साफ़ करके कोरे घड़ों में भरकर, घड़ों को लीप-पोतकर, और उन पर मोहर लगाकर कोठार में रखवा दिया।

दूसरे वर्ष वर्षा ऋतु आने पर फिर से इन धानों को खेत में बोया और पहले की तरह काटकर, साफ़ करके घड़ों में भरकर रख दिया।

इसी प्रकार तीसरे और चौथे वर्ष किया और अब उन पाँच दानों के बढ़ते-बढ़ते सैकड़ों घड़े धान हो गये। इन घड़ों को कोठार में सुरक्षित रख रोहिणी निश्चिन्त होकर रहने लगी।

चार वर्ष बीत जाने के पश्चात् एक दिन धन्य ने सोचा कि मैंने जो अपनी पतोहुओं को धान के पाँच दाने दिये थे, उन्हें बुलाकर पूछना चाहिये

कि किसने किस प्रकार से उनकी सम्हाल की है। धन्य ने फिर अपने सगे-संबंधियों को निमंत्रित कर उनके सामने अपनी पतोहुओं को बुलाया और उनसे धान के दाने माँगे।

पहले उज्झिका आई। वह अपने ससुर के कोठार में गई और वहाँ से धान के पाँच दाने लाकर उसने अपने ससुर के सामने रख दिये। धन्य ने अपनी पतोहू से पूछा कि ये वही दाने हैं या दूसरे ? उज्झिका ने सच-सच कह दिया कि पिता जी, उन दानों को मैंने उसी समय फेंक दिया था; ये दाने मैंने आपके कोठार में से लाकर आपको दिये हैं। यह सुनकर धन्य को बहुत क्रोध आया, और उसने उज्झिका को घर के झाड़ने-पोंछने और सफ़ाई करने के काम में नियुक्त कर दिया।

तत्पश्चात् भोगवती आई। धन्य ने उसे घर के खोटने, पीसने और रसोई बनाने के काम में लगा दिया।

उसके बाद रक्षिका आई। उसने अपनी पिटारी खोली और उसमें से धान के पाँच दाने निकालकर अपने ससुर के सामने रख दिये। इस पर धन्य बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उसे अपने कोष-खज़ाने की स्वामिनी बना दिया।

अन्त में रोहिणी की बारी आई। उसने कहा—"पिता जी, जो धान के दाने आपने मुझे दिये थे, उन्हें मैंने घड़ों में भरकर कोठार में रख दिया है; उन्हें यहाँ लाने के लिये गाड़ियों की आवश्यकता होगी। रोहिणी ने अपने ससुर से सब बातें बताई कि उसने किस प्रकार पाँच दानों को खेत में बो-बो कर इतने धान पैदा किये हैं। धानों के घड़े मँगाये गये। धन्य अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उस दिन से उसने रोहिणी को सब घर-बार की मालकिन बना दिया।

३—प्रलोभनों को जीतो

माकंदी पुत्रों की कहानी

चंपा नगरी में माकंदी नाम का एक बड़ा व्यापारी रहता था। उसके जिनपालित और जिनरक्षित नाम के दो पुत्र थे। माकंदी के दोनों पुत्र बड़े चतुर और साहसी थे, तथा उन्होंने लवण समुद्र (हिंद महासागर) की ग्यारह बार यात्रा कर बहुत-सा धन संचित किया था।

एक बार जिनपालित और जिनरक्षित ने सोचा कि एक बार फिर से समुद्र-यात्रा कर और धन कमाना चाहिये। दोनों भाई मिलकर अपने माता-पिता के पास गये और अपनी यात्रा का प्रस्ताव उनके सामने रक्खा। माता-पिता ने अपने पुत्रों के पुनः समुद्र-यात्रा के विचार को पसंद न किया और कहा, "तुम्हारे पास धन-सम्पत्ति की कोई कमी नहीं, फिर तुम व्यर्थ ही अपनी जान को क्यों जोखिम में डालते हो ? लवण समुद्र की यात्रा करके कुशलतापूर्वक लौटना कोई साधारण बात नहीं, अतएव तुम लोग समुद्र-यात्रा का विचार बिलकुल छोड़ दो।" परन्तु माकंदी पुत्रों ने अपने माता-पिता की बात न मानी और विविध द्रव्यों से अपनी नाव को भरकर वे विदेश यात्रा को चल दिये।

दोनों भाई जब बहुत दूर निकल गये तो एकदम आकाश में बादल घिर आये, बादल गरजने लगा, बिजली कड़कने लगी, और जोरों की हवा चलने लगी। देखते-देखते नाव उछलने लगी, लहरों में टकराकर गेंद की तरह वह ऊपर नीचे जाने लगी, उसके तख्ते टूट-टूट कर गिरने लगे, जोड़ें फटने लगीं, कीलें निकल-निकल कर गिरने लगीं, नाव की रस्सियाँ सब टूट गईं, पतवारें जाती रहीं, ध्वजदंड नष्ट हो गये, तथा नाव पर

काम करने वाले नाविक, कर्णधार, तथा व्यापारी लोग घबरा उठे, सर्वत्र हाहाकार मच गया। थोड़ी ही देर में नाव जल के अन्तर्गत एक पहाड़ से जा टकराई और क्षण भर में चूर-चूर हो गई। सब माल-असबाब समुद्र में डूब गया और व्यापारी लोग समुद्र में सदा के लिये सो गये।

सौभाग्य से जिनपालित और जिनरक्षित के हाथ लकड़ी का एक बड़ा तख्ता लग गया और वे दोनों तैरते तैरते-रत्नद्वीप नामक एक द्वीप में आ लगे। यह द्वीप नाना वृक्षों से मंडित, अत्यन्त विशाल तथा अतीव मनोहर था। इसके मध्य में एक सुंदर प्रासाद था, जिसमें रौद्ररूपिणी, अधम और साहसी एक देवी रहती थी।

दोनों भाइयों ने यहाँ थोड़ा विश्राम किया और कुछ फल-फूल खाकर अपना पेट भरा। उन्होंने नारियल को फोड़कर उसका तेल निकाला और उसकी शरीर पर मालिश की। तत्पश्चात् माकंदी पुत्रों ने पोखर में स्नान किया और एक शिला पर आराम से बैठकर बीती हुई बातों को सोचने लगे—माता-पिता से लड़भिड़ कर उन्होंने किस प्रकार उनकी अनुमति प्राप्त की? चंपा से कैसे बिदा हुए? मार्ग में वायु का कैसा उत्पात हुआ? नाव कैसे टूट टूट कर चकनाचूर हो गई? समुद्र को तैरकर कैसे पार किया? आदि घटनाओं को याद करके उनके शरीर में बिजली सी दौड़ जाती!

उधर ज्योंही रत्नद्वीप की देवी को जिनपालित और जिनरक्षित के आने के समाचार मिले, वह हवा की तरह दौड़ी हुई आई और लाल लाल आँखें दिखाकर दोनों भाइयों से कहने लगी—"हे माकंदी पुत्रो! यदि तुम्हें अपना जीवन प्रिय है तो मेरे साथ आकर मेरे महल में रहो, और मेरे साथ यथेष्ट कामसुख का उपभोग करो, अन्यथा याद रखना, इस तीक्ष्ण चमकती हुई नंगी तलवार से तुम्हारी धज्जियाँ उड़ा दूंगी।" देवी के प्रकोपयुक्त निष्ठुर वचन सुनकर दोनों भाई भय से काँपने लगे और हाथ जोड़कर बोले—"देवि, आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, जो आज्ञा

होगी, वही होगा।" देवी माकंदी पुत्रों को अपने महल में ले गई और उनके साथ यथेष्ट भोग भोगती हुई सुखपूर्वक रहने लगी।

एक बार रत्नद्वीप की देवी को इन्द्र द्वारा आदेश मिला कि वह लवण समुद्र का कूड़ा-कचरा साफ़ करे। देवी ने अपने दोनों प्रेमियों को बुलाकर कहा—"देखो, माकंदी पुत्रो, मैं इन्द्र के आदेश से लवण समुद्र साफ़ करने जा रही हूँ, तुम लोग यहीं आराम से रहना, कहीं इधर-उधर मत जाना। कदाचित् तुम्हें मेरी याद आये तो तुम पूर्व की ओर वनखंड में मन बहलाव के लिये जा सकते हो। वहाँ सदा वर्षा और शरद ऋतुएँ रहती हैं, और वह स्थान अनेक लतामंडप, पोखरिणी, बावड़ी आदि से शोभित है। यदि तुम्हारा वहाँ भी मन न लगे तो तुम उत्तर की ओर वनखंड में जा सकते हो। वहाँ सदा शरद और हेमंत ऋतुएँ रहती हैं, और वहाँ तुम्हें अनेक फूल-फुलवाड़ियाँ तथा पक्षी दृष्टिगोचर होंगे। यदि वहाँ भी तुम्हारा मन उकता जाय तो तुम पश्चिम वनखंड में सैर-सपाटे के लिये जा सकते हो। वहाँ सदा वसंत और ग्रीष्म ऋतुएँ रहती हैं, और वहाँ तुम आम, केसू, कनेर, अशोक आदि वृक्षों का आनन्द लूट सकोगे। यदि वहाँ भी तुम्हारा मन न लगे तो तुम वापिस महल में आ जाना, परन्तु याद रखना, भूलकर भी दक्षिण वनखंड की ओर न जाना। यदि तुमने उस ओर जाने का नाम लिया, तो याद रखना उग्रविष महाकाय अजगर तुम्हें जीता न छोड़ेगा।

देवी के चले जाने के बाद माकंदी पुत्रों ने थोड़ी देर तो महल में रहकर समय बिताया, तत्पश्चात् वे पूर्व वनखंड में गये, वहाँ से उत्तर वनखंड में और वहाँ से पश्चिम वनखंड में पहुँचे। उसके बाद माकंदी पुत्रों ने सोचा कि देवी ने हमें दक्षिण वनखंड में जाने के लिये मना किया है, हम लोग क्यों न जाकर देखें कि वहाँ क्या है ?

बस दोनों भाई दक्षिण की ओर रवाना हुए। थोड़ी दूर चलने पर उन्हें बड़ी असह्य दुर्गंध आई; उन्होंने वस्त्र से

अपना मुँह ढक लिया और बड़ी कठिनता से आगे बढ़े। थोड़ी दूर पर उन्हें एक बड़ा भयानक वधस्थान मिला, जहाँ हड्डियों के ढेर लगे थे और सूली पर लटका हुआ एक पुरुष करुण स्वरमें कराह रहा था।

दोनों भाई डरते-डरते उस पुरुष के पास पहुँचे। उन्हें मालूम हुआ कि वह रत्नद्वीप की देवी का वधस्थान है। पुरुष ने अपना परिचय देते हुए कहा—"मैं काकंदी का रहने वाला घोड़ों का एक व्यापारी हूँ; नाव में माल भरकर मैं परदेश जा रहा था, इतने में समुद्र में एक बड़ा तूफ़ान उठा और मेरी नाव चकनाचूर होकर समुद्र में डूब गई। एक तख्ते के सहारे तैरता हुआ मैं रत्नद्वीप में आकर लगा। वहाँ से रत्नद्वीप की देवी मुझे अपने महल में ले गई जहाँ मैं उसके साथ सुखभोग भोगता हुआ आनन्दपूर्वक रहने लगा। एक दिन मुझ से कोई साधारण-सा अपराध हो गया और देवी ने मेरी यह दुर्दशा की!"

उस पुरुष की करुण कहानी सुनकर माकंदीपुत्र और भी भयभीत हुए और उससे देवी के पंजे से छूटकर जाने का मार्ग पूछने लगे। सूली पर लटके हुए पुरुष ने कहा—"देखो, पूर्व वनखंड में शैलक नाम का एक अश्वरूपधारी यक्ष रहता है। वह प्रत्येक चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस और पूर्णिमा के दिन बड़े ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाकर कहता है—"मैं किसकी रक्षा करूँ? किसे पार उतारूँ?" उस समय तुम लोग उसके पास जाना और उसकी पूजा-अर्चना करके उससे विनयपूर्वक प्रार्थना करना—"हे यक्ष, कृपाकर हमारी रक्षा कर, हमें पार उतार।"

यह बात मालूम कर दोनों भाई बहुत प्रसन्न हुए और शीघ्रता से पूर्व वनखंड की ओर चले। वहाँ पहुँच कर उन्होंने पोखर में स्नान किया, कमल के फूल तोड़कर उनसे यक्ष की उपासना की, और तत्पश्चात् अपनी रक्षा के लिये उससे प्रार्थना करने लगे।

शैलक यक्ष ने उत्तर दिया—"देखो, माकंदी पुत्रो, मैं तुम्हारी रक्षा

कर सकता हूँ, परन्तु तुम्हें मेरी एक बात माननी होगी। वह यह कि जब मैं तुम्हें अपनी पीठ पर बैठाकर चलूं तो उस समय रत्नद्वीप की देवी तुम्हें नाना प्रकार के हावभाव प्रदर्शित कर लुभाने की चेष्टा करेगी, परन्तु तुम लोग ज़रा भी विचलित न होना। यदि तुमने अस्थिर होकर ज़रा भी इधर-उधर देखा तो याद रखना मैं उसी समय तुम्हें समुद्र में पटक दूंगा और वह देवी तुम्हारा तत्काल वध कर डालेगी।"

माकंदी पुत्रों ने यक्ष की बात मान ली। यक्ष ने अश्व का रूप बनाया और दोनों को अपनी पीठ पर चढ़ाकर बड़े वेग से चम्पा की ओर चल दिया।

इतने में रत्नद्वीप की देवी लौटकर आई और उसने देखा कि माकंदी पुत्र महल में नहीं हैं। उसने उन्हें पूर्व, उत्तर, और पश्चिम वनखंडों में खोजना शुरू किया, मगर कहीं पता न चला। देवी समझ गई कि माकंदी पुत्र हाथ से निकल भागे हैं।

उसने देखा कि दोनों भाई शैलक की पीठ पर सवार होकर चम्पा की ओर भागे जा रहे हैं। बस उसने क्रोध में आकर अपनी तलवार निकाली और उन्हें लक्ष्य करके बोली—"हे माकंदी पुत्रो, तुम लोग मुझे छोड़कर कहाँ भागे जा रहे हो? क्या तुम मौत से नहीं डरते? अब भी तुम लोग मेरी बात मान लो, नहीं तो याद रखना इस तलवार से तुम्हारा सिर धड़ से अलग कर दूंगी।" परन्तु माकंदीपुत्रों के ऊपर देवी के इन वचनों का कोई असर न हुआ।

जब देवी ने देखा कि उसके वचनों का कोई असर नहीं हो रहा है तो उसने दूसरी चाल चली। वह उन्हें नाना हास-विलासपूर्ण शृंगार-युक्त मधुर वचनों से संबोधित कर कहने लगी—"हे माकंदी पुत्रो, तुम लोग मेरे साथ किस प्रकार हँसते-बोलते थे और ललित क्रीड़ायें करते थे। क्या तुम लोग सब कुछ भूल गये?"

देवी ने देखा कि जिनरक्षित के ऊपर उसके वचनों का असर हो



रहा हूँ, अतएव वह अब उसी को लक्ष्य करके कहने लगी—"हे जिनरक्षित, तुम मुझे कितना चाहते थे ! कितना प्यार करते थे ! एक क्षण भर के लिये भी तुम मुझसे अलग न होते थे ! अब तुम्हें क्या हो गया ? प्रियतम, तुम मुझे अकेली छोड़कर कहाँ चले ? तुम इतने निर्दय कैसे हो गये ? आओ, आओ, आकर मेरी जल्द सुध लो, अन्यथा मैं तुम्हारे देखते-देखते ही प्राण त्याग कर दूंगी।"

देवी के हृदयस्पर्शी करुण वचन सुनकर जिनरक्षित का हृदय पिघल गया, और ज्योंही उसने अपने प्यार भरे नेत्रों से उसकी ओर देखा, शैलक यक्ष ने झट से उसे अपनी पीठ के ऊपर से समुद्र में पटक दिया, और देवी ने लाल-लाल आँखें निकालकर तत्क्षण अपनी कराल तलवार से उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले।

देवी अट्टहास करती हुई अब जिनपालित के पीछे चली। उसने जिनपालित को डिगाने के अनेक प्रयत्न किये, अनेक प्रकार के हाव-भाव दिखलाये, परन्तु जिनपालित का मन एक क्षण के लिये भी न डिगा। देवी अन्त में थककर लौट गई।

जिनपालित निर्विघ्न कुशलता से चम्पा पहुँच गया और अपने माता-पिता से जा मिला।

४—छोटे बड़े काम कैसे कर सकते हैं

शेर और खरगोश की कहानी

किसी जंगल में एक शेर रहता था। उसे हरिण का मांस बहुत अच्छा लगता था और वह प्रतिदिन हरिण मार मारकर खाता था। एक दिन जंगल के सब हरिणों ने मिलकर सभा की कि हरिण जाति पर महान् अन्याय हो रहा है, और दिन पर दिन हरिणों की संख्या घटती जा रही है। सब हरिण इकट्ठे होकर जंगल के राजा के पास पहुँचे और कहने लगे, "महाराज ! हमने आपका क्या अपराध किया है जो आप हमसे इतने रुष्ट हैं; कृपा कर हमारी रक्षा कीजिये। हम लोगों ने तय किया है कि हम आपके भोजन के लिये जंगल में से प्रति दिन एक प्राणी भेजेंगे। इससे आपको घर बैठे भोजन मिलेगा, और साथ ही हमारी रक्षा होगी।"

शेर को यह बात जँच गई, और शेर को अब घर बैठे-बैठे भोजन मिलने लगा।

एक बार एक बूढ़े खरगोश की बारी आई। खरगोश ने चलते समय अपने साथियों से कहा, "आप लोग चिन्ता न करें। ईश्वर ने चाहा तो मैं आज सकुशल लौटकर आऊँगा और जंगल के प्राणियों का जीवन सदा के लिये निर्विघ्न हो जायगा।"

खरगोश जब शेर के पास पहुँचा, सूर्योदय हो चुका था। शेर ने गरजकर पूछा, "रे दुष्ट, तू ने इतनी देर कहाँ लगाई ?" खरगोश ने कहा, "महाराज, क्षमा कीजिये। जब मैं आपके पास आ रहा था, रास्ते में मुझे एक दूसरा शेर मिला। उसने मुझसे पूछा, "तुम कहाँ जा रहे हो ?" मैंने जवाब दिया, "जंगल के राजा के पास।" इस पर उस शेर

ने कहा, "तुम झूठ बोलते हो; मेरे सिवाय जंगल का कोई दूसरा राजा नहीं हो सकता।" मैंने कहा, "महाराज, मैं सच कहता हूँ। यदि मैं उसके पास न जाऊँगा तो वह जंगल में जाकर मेरे सब साथियों को मार डालेगा, अतएव इस समय तो आप मुझे जाने की आज्ञा दीजिये। मैं अपने राजा से जाकर कहूँगा, तथा यदि आप उससे अधिक बलशाली हुए तो फिर हम लोग आप की ही आज्ञा में चला करेंगे।"

जंगल के राजा की बात सुनकर शेर को बहुत क्रोध आया। वह गरजकर खरगोश से बोला, "बता वह दुष्ट कहाँ रहता है, मैं उसके पास अभी जाकर उसे मजा चखाता हूँ।" खरगोश शेर को साथ लेकर चल दिया। कुछ दूर चलने पर उसने एक कुएँ की ओर इशारा करके कहा, "महाराज, वह शेर इस कुएँ में रहता है। देखिये, आप इस कुएँ पर बैठ कर गर्जना कीजिये, आपको उसकी प्रति-गर्जना सुनाई देगी। शेर ने कुएँ पर चढ़कर अपने प्रतिद्वंदी को ललकारते हुए जोर से गर्जना की, और उसे तत्काल प्रतिध्वनि सुनाई पड़ी। शेर को अब निश्चय हो गया कि कोई दूसरा शेर कुएँ में बैठा है। क्षण भर के लिये उसने गर्जना बन्द कर दी तो कुएँ में से भी कोई प्रतिध्वनि नहीं सुनाई दी। शेर ने समझा कि उसका प्रतिद्वन्दी डर के मारे अब चुप हो गया है। उसने सोचा कि इस दुष्ट को कुएँ के अन्दर जाकर मजा चखाना चाहिये। बस वह शेर तत्काल कुएँ में कूद पड़ा, और वहाँ उसकी खोज करने लगा। जब उसे कुएँ के अन्दर शेर का कहीं पता न चला तो उसने समझा कि वह कहीं छिपकर बैठ गया होगा। शेर और जोर-जोर से गरजने लगा, परन्तु जब उसकी गर्जना का कोई प्रत्युत्तर न मिला तो उसने सोचा कि उसका शत्रु भय के मारे कुएँ से निकलकर भाग गया है। शेर ने कुएँ से बाहर निकलकर आने की बहुत कोशिश की, परन्तु वह सिर पटक कर रह गया।

खरगोश ने जब यह समाचार अपने साथियों को सुनाया तो वे बड़े प्रसन्न हुए और सब ने खरगोश की बुद्धि की बड़ी सराहना की।

५—भिखारी का सपना

एक बार किसी भिखारी को बहुत भूख लगी। वह एक गोशाला में गया, और वहाँ ग्वालों ने उसे छककर दूध पिलाया। दो-चार दिन बाद भिखारी फिर उसी गोशाला में पहुँचा, और अब की बार ग्वालों ने उसे एक दूध की हंडी भरकर दी। भिखारी दूध की हंडी पाकर बड़ा प्रसन्न हुआ। वह उस हंडी को अपने घर ले आया और उसे खाट के सिर-हाने रखकर खाट पर लेट गया।

खाट पर लेटा-लेटा भिखारी सोचने लगा—"इस दूध का मैं दही जमाऊँगा; दही बेचकर मुर्गी खरीदूंगा। मुर्गी अंडे देगी और उन अंडों को बेचकर मैं बकरी लूंगा। बकरी बेचकर मैं गाय लूंगा, उससे बहुत से बैल हो जायेंगे। बैलों को बेचकर मैं बहुत सा धन कमा लूंगा, और उसे ब्याज पर चढ़ाकर बड़ा सेठ बन जाऊँगा। जब मेरे पास धन हो जायगा तो किसी कुलीन सुंदर कन्या से विवाह करूँगा, और खूब चैन से रहूँगा। मेरी घर वाली मेरी आज्ञा में चलेगी। यदि वह अपने कुलमद के कारण कभी मेरे सिरहाने होकर खाट पर चढ़ेगी तो मैं डाट-फटकार लात मारकर उसे घर से निकाल दूंगा।"

बस खाट पर लेटे-लेटे भिखारी ने आवेश में आकर जो अपनी 'घरवाली' को मारने के लिये लात उठाई तो वह दूध की हंडी में जाकर लगी और हंडी का सब दूध जमीन पर फैल गया।

भिखारी जब होश में आया तो उसे मालूम हुआ कि यह उसका सपना था!

६—काम सच्ची उपासना है

सेठ और उसकी पतोहू की कहानी

किसी सेठ का पुत्र धन कमाने के लिये परदेश गया और अपनी जवान औरत को अपने पिता के पास छोड़ गया। सेठ की पतोहू बड़े शौक़ीन स्वभाव की थी। वह सुस्वादु भोजन करती, पान खाती, इतर-फुलेल लगाती, सुंदर वस्त्राभूषण पहनती और दिन भर यों ही बिता देती; घर के काम में उसका ज़रा भी मन न लगता। उसे अपने पति की बहुत याद आती, परन्तु वह लाचार थी !

एक दिन सेठ की पतोहू का मन बहुत चंचल हो उठा। उसने दासी को बुलाकर कहा "दासी किसी पुरुष को बुलाओ, किसी को जानती हो?"

दासी ने आकर सेठ से कहा कि बहू जी किसी पुरुष को बुलाने के लिये कह रही हैं। यह सुनकर सेठ जी बहुत चिन्तित हुए और सोचने लगे कि क्या करना चाहिये। उन्होंने तुरंत सेठानी को बुलाया और कहा, "देखो, हम तुम दोनों लड़ाई कर लेंगे; तुम थोड़े समय के लिये कहीं अन्यत्र जाकर रह जाना।" सेठानी ने अपने पति की बात मान ली। अगले दिन सेठ जी घर आये और सेठानी से भोजन माँगा। सेठानी ने चिल्लाकर कहा, "अभी भोजन तैयार नहीं है।" बस दोनों में झगड़ा होने लगा। सेठ जी ने सेठानी को मार-पीटकर घर से निकाल दिया।

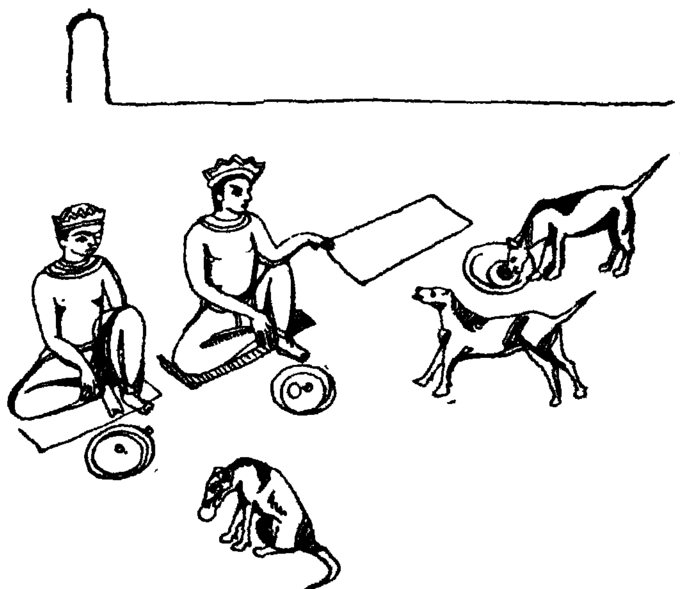
अपने सास और ससुर की कलह सुनकर उनकी पतोहू घर से निकल कर आई और पूछने लगी, "पिता जी, क्या बात है ?" सेठ ने कहा "बेटी, आज से मैंने तुम्हें अपने घर की मालकिन बना दिया है। अब तू ही घर का सब काम-काज देखना।" बहू ने घर का सब काम सम्हाल लिया।

अब वह काम में इतनी संलग्न रहने लगी कि उसे भोजन करने का समय भी बड़ी कठिनता से मिलता—साज-शृंगार वह सब भूल गई। एक दिन दासी ने आकर कहा, "बहू जी, मैंने एक पुरुष की खोज की है, आप कहें तो बुलवाऊँ?" बहू ने कहा, "दासी, इस समय मुझे मरने की भी फ़ुरसत नहीं, तू पुरुष की बात करती है?"

७—खाओ और खाने दो

तीन राजकुमारों की कहानी

किसी राजा के तीन पुत्र थे। वह किसी एक को राजसिंहासन पर बैठाना चाहता था। परन्तु निश्चय न कर पाता था कि तीनों में से किसे राजगद्दी दे।



एक दिन राजा ने तीनों राजकुमारों को खीर की तीन थालियाँ

परोसीं और व्याघ्र के समान शृंखलाबद्ध भयानक कुत्तों को उन पर छोड़ दिया। शृंखला से छूटते ही कुत्ते राजकुमारों के पास आये और उनकी थाली में मुँह डालने लगे। यह देखकर पहला राजकुमार भय के मारे उठ खड़ा हुआ और अपनी थाली छोड़कर वहाँ से भाग गया। दूसरा राजकुमार डंडा लेकर कुत्तों को मारने लगा—वह स्वयं भोजन करता रहा, परन्तु उसने कुत्तों को नहीं खाने दिया। तीसरे राजकुमार ने सोचा कि अकेले-अकेले खाना ठीक नहीं, अतएव वह स्वयं भी खाता रहा और उसने कुत्तों को भी खिलाया। राजा तीसरे राजकुमार से बहुत प्रसन्न हुआ, और उसे राजपद पर अभिषिक्त किया।

८—अंधे नाचें बहरे गायें

बहरों का संवाद

किसी गाँव में एक बहरा कुटुंब रहता था। कुटुंब में चार प्राणी थे—बूढ़ा, बुढ़िया, उनका पुत्र और पुत्रवधु। एक बार बूढ़े का पुत्र खेत में हल चला रहा था। इतने में वहाँ एक बटोही आया और उसने हलवाहे से रास्ता पूछा। हलवाहा कानों से बहरा था; उसने समझा कि बटोही कह रहा है—"तुम्हारा बैल मरखना है।" हलवाहे ने उत्तर दिया, "अरे मूर्ख यें बैल मेरे घर पैदा हुए है, मैंनें इन्हें पाल पोसकर बड़ा किया है, ये मरखने कैसे हो सकते हैं? तू झूठ बोलता है।" यह कहकर अपना हल उठाकर वह बटोही को मारने दौड़ा। बटोही ने समझा, यह आदमी पागल है; उसने अपना रास्ता लिया।

कुछ समय पश्चात् किसान की औरत अपने पति के लिये खाना लेकर आई। किसान ने उससे कहा, "देख री, एक आदमी कहता था कि हमारे बैल मरखने हैं।" औरत ने समझा, उसका पति कह रहा है कि खाने में नमक कम है। उसने उत्तर दिया, "मैं कुछ नहीं जानती; यह खाना तुम्हारी माँ ने बनाया है।" औरत ने घर जाकर अपनी सास से कहा, "तुम्हारा पुत्र कहता है कि खाने में नमक कम है।" उस समय उसकी सास सूत कात रही थी। उसने समझा, बहू कह रही है कि सूत बहुत मोटा है। उसने उत्तर दिया, "सूत मोटा हो या पतला, बूढ़े के काम में आ जायगा।" उसने बूढ़े को बुलाकर कहा, "यह सूत बहुत मोटा है, तुम्हारे काम में आ जायगा।" बूढ़ा उस समय तिलों की रखवाली कर रहा था। उसने समझा, बुढ़िया कह रही है, "तुमने तिल खा लिये हैं।" बूढ़े ने शपथ पूर्वक कहा, "मैं तुम्हारी क़सम खाकर कहता हूँ जो मैंने एक भी तिलको हाथ लगाया हो।"

६—अक़्ल बड़ी या भैंस ?

किसी शहर में कोई स्त्री रहती थी। जब उसका पति मर गया तो वह अपने लड़के को लेकर एक गाँव में जाकर रहने लगी। बड़े होने पर लड़के ने अपनी माँ से पूछा, "माँ, पिता जी कहाँ गये ?" माँ ने उत्तर दिया, "बेटा, वे परलोक सिधार गये।" लड़के ने पूछा, "माँ, वे क्या करते थे ?" माँ ने कहा, "बेटा, वे नौकरी करते थे।" लड़के ने कहा, "क्या मैं नौकरी नहीं कर सकता ? मैं भी नौकरी करना चाहता हूँ।" माँ ने कहा, "बेटा, अभी तू छोटा है, तू नौकरी करना क्या जाने ?" लड़के ने कहा, "माँ, तू मुझे बता, नौकरी कैसे की जाती है, मैं वैसे ही करूँगा।" माँ ने कहा, "देख बेटा, नौकरी करने वाले को बहुत सी बातें आनी चाहिये—उसे नम्रतापूर्वक रहना चाहिये, मालिक का जय जयकार करना चाहिये, अपने आपको छोटा समझना चाहिये, तथा मालिक की आज्ञानुसार चलना चाहिये।" लड़के ने कहा, "माँ, ये काम तो बहुत कठिन नहीं; इन्हें मैं अच्छी तरह कर सकता हूँ।" बस अगले दिन लड़के ने अपनी माँ के चरण छूकर नौकरी के लिये प्रस्थान कर दिया।

चलते-चलते लड़का एक जंगल में पहुँचा। वहाँ बहुत से शिकारी हरिणों की घात लगाये बैठे थे। लड़के ने उन्हें देखकर दूर से जय जयकार किया, जिससे सब के सब हरिण वहाँ से भाग गये। शिकारियों का बना बनाया खेल मिट्टी हो गया। उन्हें बहुत क्रोध आया और उन्होंने इस गँवार लड़के को पकड़कर पीटा। लड़के ने सब बात कह दी। शिकारियों ने उसे समझाया कि रे मूर्ख, ऐसे अवसर पर जोर से नहीं चिल्लाना चाहिये, बल्कि चुपचाप दबे पाँवों आना चाहिये। लड़के ने अपनी भूल स्वीकार की और वह आगे बढ़ा। कुछ दूर पर उसे कपड़े धोते हुए धोबी दिखाई

दिये। लड़का चुपचाप दबे पावों धोबियों की ओर चला। संयोगवश धोबियों के कपड़े रोज चोरी जाते थे और चोर का पता लग नहीं रहा था, अतएव जब धोबियों ने इस लड़के को दबे पाँवों आते देखा तो उन्होंने समझा कि यही आदमी चोर होना चाहिये। उन्होंने पकड़ कर उसे खूब पीटा। लड़के ने सब बातें सच-सच कह सुनाईं। धोबियों ने उसे समझाया कि देख, ऐसे समय चुपचाप दबे पाँवों नहीं आना चाहिये, बल्कि कहना चाहिये, "खार डालने से सफ़ाई आती है।"

लड़का आगे बढ़ा। थोड़ी दूर चलकर उसने देखा कि किसान खेत में बीज बो रहे हैं। उसने वही कहा, "खार डालने से सफ़ाई आती है।" किसानों को बहुत बुरा लगा। उन्होंने कहा कि यह आदमी व्यर्थ ही क्यों हमारा अनिष्ट चिन्तन करता है। उन्होंने उसे पकड़ कर पीटा, और कहा, "मूर्ख, ऐसे अवसर पर कहना चाहिये कि ऐसे ही और भी हों।" आगे चलने पर लड़के को एक मुर्दा दिखाई दिया। उसे देखते ही वह चिल्ला उठा, "ऐसे ही और भी हों।" यहाँ भी लोगों ने उसे पीटा और समझाया कि ऐसे समय कहो, "ऐसे प्रसंग कभी न आयें।" आगे चलने पर लड़के को एक बारात मिली। दुलहा और दुलहिन को देखकर वह बोल पड़ा, "ऐसे प्रसंग कभी न आयें।" यहाँ भी उसकी मरम्मत हुई। बारातियों ने उसे समझाया कि ऐसे समय पर कहना चाहिये, "ऐसे प्रसंग बहुत से आयें; हमेशा मैं यही देखूँ।" आगे बढ़ने पर लड़के को एक क़ैदी मिला, जिसके पैरों में बेड़ियाँ पड़ी हुई थीं। उसे देखकर लड़के ने कहा, "ऐसे प्रसंग बहुत से आयें; हमेशा मैं यही देखूँ।" लड़के की फिर पिटाई हुई। क़ैदी ने समझाया कि देखो ऐसे समय कहो, "तुम शीघ्र ही बन्धन-मुक्त हो जाओ।" कुछ दूर चलने पर लड़के को कुछ मित्र दिखाई दिये। उनको देखकर उसने वही कहा, "आप शीघ्र ही बंधन-मुक्त हो जायें।" उसकी फिर मरम्मत हुई।

कुछ समय पश्चात् वह लड़का एक शहर में पहुँचा, और उसने

एक ठाकुर (दंडिकुलपुत्तग) के घर नौकरी कर ली। एक दिन ठकुराइन भोजन बनाये बैठी थी; भोजन ठंडा हो रहा था। उसने लड़के को बुला कर कहा, "जा, ठाकुर को भोजन के लिये बुला ला।" ठाकुर उस समय कुछ मित्रों में बैठे गपशप कर रहे थे। लड़के ने दूर से ही कहा, "चलिये ठाकुर साहब, ठकुराइन भोजन के लिये बुला रही हैं।" ठाकुर यह सुनकर बड़ा लज्जित हुआ। उसने घर आकर लड़के को समझाया कि देखो, जब दो आदमी बैठे हों, धीरे से कान में कहना चाहिये।

संयोगवश कुछ समय बाद ठाकुर के घर आग लग गई। ठकुराइन दौड़ी-दौड़ी आई और नौकर से कहा कि जा जल्दी जाकर ठाकुर को खबर दे। लड़का ठाकुर के पास पहुँचा और जाकर धीरे से कान में कहने लगा, "ठाकुर साहब, चलिये, घर में आग लग गई है; ठकुराइन आपको बुला रही हैं।" ठाकुर लड़के की मूर्खता पर बड़ा बिगड़ा। उसने कहा, "मूर्ख, ऐसे समय कभी घर छोड़कर नहीं जाना चाहिये, बल्कि जिस तरह हो सके, पानी से, गोबर से, गोमूत्र से, मट्ठे से, दही से, वहीं रहकर आग बुझाना चाहिये।

एक दिन सरदी के मौसम में ठाकुर स्नान करके आ रहे थे। सरदी के कारण उनके शरीर में से भाप निकल रही थी। लड़के ने समझा कि ठाकुर के शरीर में आग लग गई है। बस वह गोबर, गोमूत्र, दही, मट्ठा, पानी, जो कुछ उसके हाथ लगा, उठा उठाकर ठाकुर के शरीर पर फेंकने लगा। ठाकुर जोर से चिल्लाया, तो बहुत से लोग इकट्ठे हो गये। लोगों ने जब सब हाल सुना तो हँसते-हँसते उनके पेट दुखने लगे।

१०—बिना विचारे करने का फल

किसी सैनिक की स्त्री (चारमडिया) ने एक नौली पाल रक्खी थी। यह नौली घर में सब जगह फिरती थी। एक बार सैनिक की स्त्री और नौली दोनों गर्भवती हुई और दोनों ने एक साथ प्रसव किया। सैनिक की स्त्री ने सोचा कि अच्छा है इसके बच्चे को देखकर मेरा बच्चा प्रसन्न होगा, और उसके साथ खेला करेगा।

सैनिक की स्त्री नौली के बच्चे को दूध और लप्सी खाने को देती और उसे अच्छी तरह रखती थी। कुछ दिनों में वह बच्चा बड़ा हो गया और घर में कूदता-फाँदता फिरने लगा।

एक बार की बात है कि सैनिक की स्त्री अपने घर के दरवाजे के पास अनाज खोट रही थी; बच्चे को उसने खाट से उतार कर नीचे लिटा रक्खा था। इतने में वहाँ एक सर्प आया, और खाट के ऊपर चढ़ गया। जब नौले ने सर्प को खाट से उतरते देखा तो वह क्रोध में आकर उस पर झपटा, और उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले।

सर्प को मार कर नौला बहुत प्रसन्न हुआ। वह रक्त से सने हुए मुँह से जल्दी-जल्दी अपनी मालकिन के पास दौड़ा गया, और उसके पैरों में गिरकर उसकी अनुनय-विनय करने लगा। नौले का मुँह रक्त से सना देखकर सैनिक की स्त्री ने समझा कि अवश्य ही इस दुष्ट ने मेरे बच्चे को मारकर खा लिया है। बस बिना कुछ सोचे-समझे उसने अपना मूसल उठाया और क्षण भर में नौले के दो टुकड़े कर डाले।

सैनिक की स्त्री दौड़ी-दौड़ी रोती-पीटती जब अपने बच्चे के पास आई तो उसने देखा कि बच्चा आराम से सो रहा है, और उसके पास एक काला सर्प मरा पड़ा है!

११—तीनों में कौन सब से अच्छा ?

किसी ब्राह्मणी के तीन लड़कियाँ थीं। ब्राह्मणी अपनी लड़कियों से बहुत प्रेम करती थी और चाहती थी कि वह उन्हें किसी अच्छे कुल में दे जिससे वे जीवन भर सुख से रह सकें। कुछ समय बाद जब लड़कियाँ सयानी हुईं तो उनकी माँ ने उन्हें समझाया, "देखो बेटियो, विवाह के पश्चात् अपने पति को लात से मारना।"

तीनों लड़कियों का विवाह हो गया और वे अपनी ससुराल चली गईं। पहली लड़की ने जब अपने पति देव को लात मारी तो वह उसके चरणों को हाथ से पकड़ कर दबाने लगा और कहने लगा, "देवि, कहीं तुम्हारे फूल जैसे इन कोमल चरणों को चोट तो नहीं पहुँची ?" लड़की ने जाकर अपनी माँ से कहा। माँ ने कहा, "बेटी, तू निश्चिन्त होकर रह; तेरा पति तेरा दास बनकर रहेगा।" दूसरी लड़की ने भी प्रथम परिचय में अपने पति को लात जमाई। पति ने साधारण क्रोध प्रदर्शित किया, परन्तु वह बिना कुछ विशेष कहे-सुने शान्त हो गया। लड़की ने जब माँ से जाकर कहा तो माँ बोली, "बेटी, तू भी निश्चिन्त रह। तेरा पति भी तेरा दास बनकर रहेगा। परन्तु तू उसे विशेष अप्रसन्न मत करना; मर्यादा पूर्वक चलना।" तीसरी लड़की ने भी यथावत् माँ के आदेश का पालन किया। जब उसने अपने पति के ऊपर पाद-प्रहार किया तो उसके पति ने रुष्ट होकर उसकी खूब खबर ली, और वह गुस्से में आकर वहाँ से उठ कर चला गया। लड़की डरती-डरती अपनी माँ के पास पहुँची और उसे सब हाल कह सुनाया। माँ ने कहा, "बेटी, तू चिन्ता न कर; तुझे सर्वोत्तम वर मिला है। तू होशियारी से रहना; अपने पति की कभी अवज्ञा न करना; उसकी देवता के समान पूजा करना, क्योंकि नारियों

का भर्ता ही देवता है ।" तत्पश्चात् उस लड़की ने अपने पति के पास जाकर उससे क्षमा माँगी, और कहा, "यह हमारे कुल में रिवाज चला आता है; मैंने किसी दुर्भावना से ऐसा नहीं किया ।" तत्पश्चात् पति-पत्नी आनन्द से रहने लगे ।

१२—मूर्ख बड़ा या विद्वान् ?

कोई ब्राह्मण व्याकरण के कुछ सूत्रों को पढ़कर एक गाँव में जा पहुँचा। संस्कृत के दो-चार श्लोक भी उसने याद कर रक्खे थे। गाँव वालों पर रौब जमाने के लिये इतना काफ़ी था। शीघ्र ही ब्राह्मण देवता गाँव भर में पंडित के नाम से मशहूर हो गये। गाँव के लोगों ने उनकी आजीविका का प्रबंध कर दिया, और वे बड़े आराम से दिन बिताने लगे।

एक दिन उस गाँव में पुस्तकों से लदे हुए अपने छात्रों को लेकर एक विद्वान् वैयाकरणी आये। गाँव वालों के पूछने पर उनके शिष्यों ने कहा, "ये हमारे गुरू जी हैं और व्याकरण के असाधारण विद्वान् हैं।" गाँव वालों ने कहा, "हमारे गाँव में भी एक पंडित हैं। चलो हमारे और तुम्हारे पंडित जी का शास्त्रार्थ हो जाय।"

शास्त्रार्थ की तिथि निश्चित की गई और दोनों पंडितों का शास्त्रार्थ होने लगा। गाँव के पंडित जी ने प्रश्न किया, "बताइये महाशय, काग को संस्कृत में क्या कहते हैं ?" वैयाकरणी जी ने उत्तर दिया, "काग को संस्कृत में कहते हैं 'काक'।" गाँव के पंडित जी जोर से हँस पड़े और बोले, "महाशय, काक तो सभी लोग कहते हैं, यह बताइये संस्कृत में उसे क्या कहते हैं ?" वैयाकरणी जी ने फिर वही उत्तर दिया। इस पर पंडित जी करतल-ध्वनि के साथ और भी जोर से खिलखिलाकर हँसे और बोले, "बस यही आपका पांडित्य है ? देखिये, मैं आपको बतलाता हूँ, संस्कृत में काक को कहते हैं 'क्रीकाक'।" इस पर गाँव के और लोगों ने भी अट्टहास किया और वे जोर-जोर से चिल्लाकर पंडित जी की जय बोलने लगे। बिचारे वैयाकरणी जी कुछ न बोल सके, और अपना सा मुँह लेकर अपने छात्रों के साथ वहाँ से चल दिये।

१३—वैद्यराज या यमराज ?

किसी नगर में एक राजा रहता था। जब राजा का वैद्य मर गया तो उसने राज-कर्मचारियों से पूछा कि वैद्य जी के कोई पुत्र है या नहीं। मालूम हुआ कि वैद्य जी के पुत्र तो है परन्तु वह पढ़ा-लिखा नहीं है। राजा ने वैद्यपुत्र को बुलाया और कहा कि देखो यदि तुम कुछ पढ़-लिख लो तो हम तुम्हें तुम्हारे पिता जी के स्थान पर नियुक्त कर देंगे। वैद्यपुत्र यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ, और विद्याध्ययन के लिये परदेश चला गया।

वैद्यपुत्र एक वैद्य के पास रहकर विद्या पढ़ने लगा। एक बार की बात है कि एक बकरी के गले में ककड़ी अटक गई। बकरी का मालिक अपनी बकरी को वैद्य जी के पास लाया। वैद्य जी ने पूछा, "तुम्हारी बकरी कहाँ चरती थी ?" उत्तर मिला, "बाड़े में।" वैद्य जी ने कहा, "इसके गले में ककड़ी अटक गई है।" वैद्य जी ने बकरी के गले में एक कपड़ा बाँधकर उसे इस तरह ऐंठा कि ककड़ी टूटकर गले के बाहर आ गई। वैद्यपुत्र भी वहीं उपस्थित था। उसने सोचा, अवश्य ही यह कोई वैद्यक की विशेष प्रक्रिया होनी चाहिये, जो इतनी जल्दी बकरी के गले की ककड़ी टूटकर बाहर आ गई।

कुछ समय पश्चात् वैद्यपुत्र विद्या पढ़कर वापिस आ गया। राजा ने सोचा कि वैद्यपुत्र ने बहुत शीघ्र विद्याध्ययन समाप्त कर लिया है, अवश्य ही यह बहुत मेधावी होना चाहिये। राजा ने उसका बहुत आदर-सत्कार किया और उसे राजवैद्य के पद पर नियुक्त कर दिया।

एक बार रानी के गले में एक फोड़ा निकल आया। वैद्यवर को बुलाया गया। उन्होंने राजा के कर्मचारियों से पूछा, "बताओ, महारानी कहाँ

चर रही थीं ?" कर्मचारी बड़े चक्कर में आये। उन्होंने कहा, "महाराज, हम पूछकर बतायेंगे।" वैद्यराज ने कहा, "चिन्ता की कोई बात नहीं; आप लोग कह दें कि रानी बाड़े में चर रही थीं।" कर्मचारियों ने सोचा कि संभवतः इसमें कुछ रहस्य हो, अतः उन्होंने वही कह दिया जो वैद्य जी चाहते थे। वैद्यराज ने एक वस्त्र लेकर उसे रानी के गले में लपेट कर इस तरह ऐंठा कि रानी का साँस घुटने लगा और क्षणभर में उसका प्राणान्त हो गया।

१४—घंटी वाला गीदड़

एक बार किसी किसान के खेत में ईख की खूब फ़सल हुई। खेत में गीदड़ लगने लगे। किसान ने सोचा कि इस तरह तो ये गीदड़ सब का सब ईख खा डालेंगे, अतएव उसने खेत के चारों ओर एक खाई खुदवा दी। एक दिन इस खाई में एक गीदड़ गिर पड़ा। किसान ने उसे खाई में से निकलवाकर, उसके कान और पूंछ काटकर, उसे व्याघ्र की खाल उढ़ाकर, गले में एक घंटी बांधकर छोड़ दिया। छूटते ही गीदड़ जंगल की ओर भागा। जब उसके साथियों ने इस अद्भुत प्राणी को देखा तो वे भय के मारे भाग गये। रास्ते में उन्हें भेड़िये मिले। भेड़ियों के पूछने पर गीदड़ बोले, "विचित्र शब्द करता हुआ कोई भूत दौड़ा आ रहा है, चलो भाग चलो।" बस ये भी भागने लगे। आगे चलकर उन्हें कुछ व्याघ्र मिले। वे भी डर के मारे इनके साथ भागने लगे। कुछ दूर पर चीते मिले, और वे भी इन लोगों के साथ-साथ हो लिये। आगे चलकर मार्ग में एक सिंह बैठा हुआ था। इन सब को भागते देख उसने उनके भागने का कारण पूछा। उन्होंने कहा, "कोई अद्भुत प्राणी हम लोगों का पीछा कर रहा है, और उससे बचने का कोई उपाय नहीं है।" इतने में घंटी वाला गीदड़ वहाँ से गुज़रा। सिंह ने उसके पास आकर देखा तो मालूम हुआ कि गीदड़ है। सिंह को बहुत क्रोध आया। उसने उसे बहुत डाँट-फटकार बताई, और वहीं दबोचकर मार डाला।

१५—सच्चा भक्त कौन ?

किसी पर्वत के झरने के नीचे शिवजी का एक मंदिर था। वहाँ बहुत से लोग शिवजी की पूजा के लिये आते थे। शिवजी के दो भक्त मुख्य थे—एक ब्राह्मण और दूसरा भील। ब्राह्मण प्रति दिन शिवजी का अभिषेक करता, उन पर फूल-पत्तियाँ चढ़ाता, गूगल जलाता, तथा चन्दन से उन्हें चर्चित करता था। ग़रीब भील के पास ये सब बहुमूल्य वस्तुएँ न थीं, इसलिए वह बिचारा हाथी के मद-जल से देवता का अभिषेक करता, जंगल की फूल-पत्तियाँ चढ़ाता और भक्तिभाव से उनके सामने नृत्य करता था।

एक दिन ब्राह्मण जब शिवजी की उपासनार्थ मंदिर में गया तो उसने देखा कि शिवजी भील से वार्तालाप कर रहे हैं। ब्राह्मण को यह बात अच्छी न लगी। उसने सोचा, "मैं ब्राह्मण हूँ, भाँति-भाँति के बहुमूल्य पदार्थों से भगवान् की मैं पूजा करता हूँ, फिर भी भगवान् मुझे छोड़कर इस भील से वार्तालाप क्यों करते हैं ?" उसने शिवजी से पूछा, "भगवन्, क्या आप मुझसे असंतुष्ट हैं। मैं उच्च कुल में जन्मा हूँ, तथा बहुमूल्य पदार्थों से आपकी पूजा करता हूँ, जब कि यह भील निकृष्ट है, और अपवित्र पदार्थों से आपकी उपासना करता है, फिर भी आप इसे क्यों चाहते हैं ?" शिवजी ने उत्तर दिया, "प्रिय भक्त, तुम ठीक कहते हो, परन्तु जितना स्नेह मुझ पर इस भील का है उतना तुम्हारा नहीं।"

एक दिन शिवजी ने अपनी एक आँख फोड़ डाली। ब्राह्मण नियत समय पर पूजा करने आया। उसने देखा, शिवजी के एक आँख नहीं है। ब्राह्मण यथावत् शिवजी की उपासना कर अपने घर चला गया। उसके बाद भील आया। उसने जब देखा कि शिवजी के एक आँख नहीं है तो

उसे अत्यन्त संताप हुआ, और उसने झट अपनी आँख निकाल कर उनके लगा दी।

दूसरे दिन ब्राह्मण फिर उपासनार्थ आया। जब उसने शिवजी के पूर्ववत् दोनों आँखें देखीं तो उसे अत्यन्त आश्चर्य हुआ। शिवजी ने उसे सब वृत्तांत सुनाया, और कहा कि इसीलिये मैं कहता था कि नीच और दरिद्र होने पर भी भील मेरा सच्चा भक्त है।

१६—कपट का फल

खसद्रुम गीदड़ की कहानी

एक बार कोई गीदड़ रात के समय जंगल में से भागकर किसी गाँव में आ गया, और जब उसे कहीं बाहर जाने का रास्ता नहीं मिला तो वह एक घर में जा घुसा। गीदड़ को घर में देखकर सब लोग जाग गये, और उसे मारने दौड़े। गीदड़ किसी तरह घर के बाहर आया, परन्तु वहाँ कुत्ते उसके पीछे लग गये, और भागता-भागता वह एक नील के कुंड में गिर पड़ा।

नीलकुंड में पड़ा-पड़ा गीदड़ छटपटाने लगा। वह बार-बार ऊपर चढ़ने का प्रयत्न करता मगर फिर नीचे गिर पड़ता। अन्त में उसने एक ज़ोर की छलाँग मारी और कुंड के बाहर निकल आया। कुंड से बाहर निकलते ही गीदड़ जंगल की ओर भागा। नीलेकुंड में पड़े रहने के कारण गीदड़ का सारा शरीर नीले रंग में रँग गया था। इसलिये मार्ग में उसे रीछ, गीदड़ आदि जो जानवर मिलते, वे उससे पूछते, "भाई, यह तेरा रूप-रंग कैसे बदल गया है।" गीदड़ जवाब देता, "भाइयो, जंगल के समस्त प्राणियों ने मिलकर मुझे खसद्रुम नामक राजा बनाया है। तुम सब लोगों को मेरी आज्ञा का पालन करना होगा; जो मेरी आज्ञा न मानेगा, वह कठोर दंड का भागी होगा।" जानवरों ने सोचा, "बात तो ठीक मालूम होती है। इसका रंग-ढंग हम लोगों से सर्वथा भिन्न है, अवश्य ही इसके ऊपर कोई दैवी कृपा जान पड़ती है।" जानवरों ने कहा, "महाराज, आपने बड़ी कृपा की जो यहाँ पधारे। हम सब आपके किंकर हैं; कहिये क्या आज्ञा है?" खसद्रुम ने उत्तर दिया,

"आओ तुम लोग मेरे लिये फ़ौरन हाथी की सवारी का प्रबंध करो।" जानवर हाथी को पकड़ लाये। खसद्रुम बड़ी शान से हाथी पर बैठकर जंगल में घूमने लगा।

एक दिन रात के समय सब गीदड़ मिलकर रो रहे थे। खसद्रुम अपने आपको न रोक सका, और वह भी उनके स्वर में स्वर मिलाकर रोने लगा। हाथी को जब मालूम हुआ कि कपटी गीदड़ उसकी पीठ पर चढ़ा फिरता है तो उसने उसे अपनी सूंड में लपेटकर नीचे गिरा दिया और मार डाला।

१७—दूसरों को व्यर्थ न छेड़ो

बन्दर और बया की कहानी

एक बया ने किसी वृक्ष पर एक सुन्दर घोंसला बना रक्खा था, जिसमें वह बड़ी मौज से रहती थी। एक बार की बात है, वर्षा ऋतु आई, ठंडी-ठंडी हवा चलने लगी, और मूसलाधार पानी बरसने लगा। इतने में वहाँ एक बन्दर आया जो ठंड से काँप रहा था और वर्षा से बचने के लिये किसी स्थान की तलाश में फिरता था। जब बया ने उसे इस दशा में देखा तो वह अपने घोंसले में बैठी-बैठी कहने लगी, "ऐ बन्दर, तू मेरे घोंसले को देख। मैं दूर-दूर से तिनके उठाकर लाई; उन्हें काटा, चीरा और उन्हें एक-एक करके जमाया। इतने परिश्रम के बाद मैं यह सुन्दर घोंसला बना सकी हूँ। देख, इसमें किंचिन्मात्र वायु अथवा जल का प्रवेश नहीं हो सकता। देख, मैं कितने सुख से इस घोंसले में रहती हूँ, कितनी हँसती-खेलती हूँ। न मुझे वर्षा का डर है, न हवा का। मैं अपने घोंसले में झूल-झूल कर वसंत ऋतु का आनन्द लेती हूँ। रे मूर्ख, मुझे तुझ पर दया आती है कि तेरे हाथ-पाँव सब कुछ होते हुए भी और तेरे हृदय में ज्ञान का प्रकाश होते हुए भी तू अपने दीर्घ आलस्य के कारण कुछ नहीं कर सकता। वर्षा की तीक्ष्ण बौछारें सहने के लिये तू तैयार है, ठंडी-ठंडी हवा के थपेड़े सहना तुझे स्वीकार है, परन्तु थोड़ा-सा परिश्रम करके तू अपना घर नहीं बना सकता? धिक्कार है तेरे आलस्य को और तेरे जीवन को! मुझे तुझ पर तरस आता है।"

बया ने इन वाक्यों को दो-तीन बार दुहराया। पहले तो बन्दर सुनता रहा, परन्तु अन्त में उससे न रहा गया। वह क्रोध से आग-बबूला

होकर, कूदकर, उस शाखा पर पहुँचा जहाँ बया का घोंसला बना था। वृक्ष पर पहुँच कर बन्दर ने उसे बड़े जोर से हिलाया। क्षण भर में बया अपने घोंसले में से निकलकर पृथ्वी पर आ गिरी, और ठंड से कांपती हुई पास के वृक्ष पर जाकर बैठ गई। बन्दर बया के घोंसले के पास गया और उसे तोड़ कर ले आया। तत्पश्चात् उसने उसके एक-एक तिनके को अलग कर हवा में उड़ा दिया। बन्दर बया से कहने लगा—"देख री बया, अब तू भी मेरे समान निर्लज्ज हो गई है; तेरा गर्व चूर्ण हो गया है। तू मेरे समान पानी में भीगती हुई और ठंड से कांपती हुई मुझे कितनी प्यारी लगती है! बया रानी, अब हम और तुम दोनों बेघर हो गये हैं। याद रख जो लोग दूसरों को नाहक़ छेड़ते हैं उनका यही हाल होता है।"

१८—गरमागरम जामुन

एक बार कोई भिखारिन किसी जंगल में जा रही थी। उसने देखा कि एक गड़रिया भेड़-बकरियाँ चरा रहा है। पास में जामुन का एक पेड़ था। भिखारिन को भूख लगी थी। उसने गड़रिये से कहा, "भाई गड़रिये, तू मुझे जामुन तोड़ दे, मैं भूखी हूँ।" गड़रिया जामुन के पेड़ पर चढ़ गया, और उससे पूछा, "बता भिखारिन, तू गरमागरम जामुन खायेगी या ठंडी ?" भिखारिन बोली, "गरमागरम।" गड़रिया पेड़ पर से जामुन गिराने लगा। जामुन धूल में गिरती थीं; भिखारिन उन्हें मुँह से फूंक-फूंक कर धूल झाड़कर खाती थी। जामुन खाती-खाती भिखारिन बोली, "गड़रिये, ये जामुन गरम तो नहीं हैं ?" गड़रिया हँसकर बोला, "पगली, ये गरम नहीं हैं तो तू इन्हें फूंक-फूंक कर क्यों खा रही है ?"

१६—लालच बुरी बलाय

गीदड़ की कहानी

किसी भील ने जंगल में एक हाथी देखा। उसे देखकर भील एक झाड़ी के पीछे छिपकर खड़ा हो गया, और वहाँ से निशाना लगाकर उसने हाथी को बड़े जोर से तीर मारा। तीर हाथी के मर्मस्थान में जाकर लगा और हाथी गिर पड़ा। यह देखकर भील बड़ा खुश हुआ, और वह अपने धनुष को वहीं फेंककर हाथ में कुठार ले हाथी के दाँत और मोती लेने चल दिया। संयोगवश वहाँ पर हाथी के गिरने से एक भीमकाय सर्प घायल हुआ पड़ा था। उसने भील को काट लिया। भील वहीं गिरकर मर गया।

इतने में वहाँ एक गीदड़ आया और जब उसने एक साथ मरे हुए हाथी, शिकारी और सर्प तथा धनुष को देखा तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ। पहले तो वह इतने प्राणियों के मृत कलेवर को देखकर डर गया, और सोचने लगा कि कहीं ऐसा न हो कि इनमें से कोई जीवित हो, और वह व्यर्थ ही मारा जाये। परन्तु अच्छी तरह देखने पर उसे मालूम हुआ कि सब निर्जीव हैं। गीदड़ की खुशी का ठिकाना न रहा। वह हिसाब लगाने लगा—"हाथी को मैं जनम भर खाता रहूँ तो भी यह खतम न होगा, शिकारी और साँप का मांस बहुत दिनों तक चलेगा, क्यों न आज मैं धनुष की रस्सी में लगी हुई ताँत को खाकर अपना पेट भरूँ ?"

बस ज्योंही वह गीदड़ धनुष की डोरी में लगी हुई ताँत को खाने चला, डोरी टूटकर उसके तालू में लगी, और गीदड़ वहीं ढेर हो गया।

२०—पंडित कौन ?

तोते की कहानी

कोई भील जंगल में से एक तोता पकड़ कर लाया, और उसका एक पैर तोड़कर, उसकी एक आँख फोड़कर उसे बाजार में छोड़ दिया। जब उस तोते का कोई खरीदार न मिला तो वह भील उसे एक श्रावक (जैनधर्म का उपासक) की दुकान पर छोड़कर, कुछ माल खरीदने के लिये पैसे लेने अपने घर आया। इस बीच में तोते ने श्रावक से कहा कि वह बहुत से आख्यान और धार्मिक कथा-कहानियाँ जानता है। श्रावक ने उसे खरीद लिया और एक पिंजड़े में बन्द कर दिया।

श्रावक के कुटुंब के लोग मिथ्या-दृष्टि थे, अतएव वह तोता उन्हें धर्मोपदेश दिया करता था। एक दिन श्रावक का पुत्र किसी माहेश्वर की कन्या को देखकर उस पर आसक्त हो गया। उस दिन न किसी ने धर्मोपदेश सुना और न किसी ने कोई प्रत्याख्यान (किसी वस्तु का त्याग) लिया। तोते के पूछने पर उन्होंने कारण बता दिया। तोते ने कहा, "तुम लोग चिन्ता न करो।" तोते ने श्रावक के पुत्र जिनदास से कहा कि "तुम सरजस्क साधुओं[1] के पास जाकर ठीकरे (ठिक्करिय) की पूजा करो। तत्पश्चात् तुम मुझे ईंट के नीचे दाब देना।" जिनदास ने ऐसा ही किया। वह सरजस्कों का अनुयायी बन गया, और उनके चरणों में गिरकर वरदान माँगने लगा कि किसी तरह मुझे यह लड़की मिल जाय। ईंट के नीचे

---

[1] स्नान न करनेवाले और गंदे रहनेवाले एक प्रकार के नग्न साधु।

दबे हुए तोते ने लड़की के पिता से कहा—"देखो, यह लड़की श्रावकपुत्र जिनदास को दे दो।" दैवाज्ञा समझकर लड़की के पिता ने जिनदास के साथ अपनी लड़की का विवाह कर दिया।

कन्या को अपने ऊपर बड़ा गर्व था। वह अपने पति से कहा करती, "देखो, मेरा विवाह दैवाज्ञा से हुआ है।" एक दिन उसके पति को हँसी आ गई। स्त्री के पूछने पर उसने सब हाल कह दिया। जिनदास की स्त्री को तोते के ऊपर बड़ा क्रोध आया। एक दिन जब सब लोग किसी उत्सव (संखडि) में लगे हुए थे, जिनदास की स्त्री ने तोते को चुरा लिया और उसे एकांत में ले जाकर कहने लगी, "तुम बड़े पंडित निकले? अब देखती हूँ तुम्हारी पंडिताई?" यह कहकर उसने तोते का एक पँख उखाड़ लिया। तोते ने सोचा, "इस तरह मरने से क्या लाभ?" उसने कहा, "पंडित मैं नहीं हूँ, पंडित है वह नाइन।" जिनदास की स्त्री ने पूछा, "कैसे?" तोता बोला—

एक बार कोई नाइन खेत में भोजन लिये जा रही थी। रास्ते में उसे चोरों ने पकड़ लिया। वह बोली, "चलो बहुत अच्छा हुआ, मुझे भी आप लोगों की तलाश थी।" नाइन ने चोरों से कहा, "इस समय तो आप मुझे छोड़ दें। आप लोग रात को मेरे घर आइये, मैं रुपये लेकर आपके साथ चलूंगी।" रात को सेंध लगाकर जब चोरों ने उसके घर में प्रवेश किया तो नाइन ने छुरे से उनकी नाक काट ली। चोर भाग गये। अगले दिन चोरों ने फिर उसे खेत में जाते हुए देखा और उसे पकड़ लिया। नाइन उन्हें देखते ही अपना सिर पीटने लगी, और बोली, "यह किसने काट ली?" नाइन उनके साथ साथ चल दी। आगे चलकर भोजन लाने के बहाने चोरों ने उसे एक कलाल के घर बेच दिया, और खुद रुपये लेकर भाग गये। नाइन वहाँ से चलकर रात को एक वृक्ष पर छिपकर बैठई ग। चोर भी किसी की गायें चुरा कर लाये, और संयोगवश उसी वृक्ष के नीचे आकर ठहरे। वे लोग वहाँ मांस पकाकर

खाने लगे। उनमें से एक चोर मांस लेकर वृक्ष पर चढ़ा। उसने जब चारों ओर देखा तो वहाँ एक औरत को बैठे हुए पाया। औरत ने उसे रुपये निकाल कर दिखलाये। चोर ज्योंही उसके पास पहुँचा, उसने बड़े जोर से उसे दाँतों से काट लिया। चोर चिल्लाकर भागा कि यह तो वही बैठी है। इस पर दूसरे चोर भी डर कर वहाँ से भाग गये। नाइन चोरी का सब माल लेकर चलती बनी।

तत्पश्चात् जिनदास की स्त्री ने तोते का दूसरा पंख उखाड़कर कहा कि नहीं तू ही पंडित है। तोते ने कहा, "पंडित मैं नहीं हूँ, पंडित है वह बनिये की लड़की।" तोता बोला—

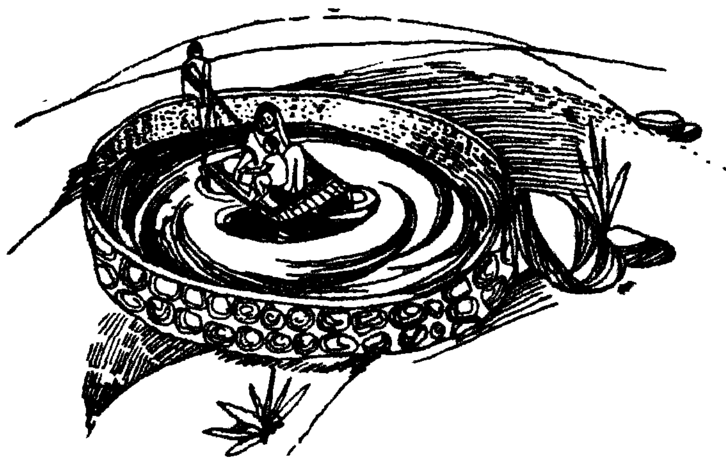
वसंतपुर में एक बनिया रहता था। एक बार उसने शर्त लगाई कि जो कोई माघ महीने की रात में पानी के अन्दर बैठा रहे उसे मैं एक हजार दीनारें दूंगा। एक दरिद्र वणिक् इसके लिये तैयार हो गया, और वह रातभर सरदी में बैठा रहा। बनिये ने सोचा, "यह वणिक् रातभर इतनी सरदी में पानी में कैसे बैठा रहा, यह मरा क्यों नहीं ?" पूछने पर वणिक् ने उत्तर दिया, "इस नगर में एक घर में रातभर दीपक जलता रहा, उसे देखकर मैं रातभर पानी में बैठा रहा। लाइये हजार दीनारें।" बनिया अपनी बात से नट गया, और बोला कि तुम दीपक के प्रभाव से ठंड में बैठे रहे, अतएव मैं तुम्हें दीनारें न दूंगा। वणिक् बिचारा निराश होकर घर चला गया। घर जाकर अपनी कन्या के पूछने पर उसने सब हाल कह दिया। वणिक् की कन्या ने कहा, "पिता जी, आप चिन्ता न करें। आप एक काम करें कि गरमी के मौसम में अन्य बहुत से लोगों के साथ उस बनिये को भी भोजन के लिये बुलावें। परन्तु भोजन के साथ आप उसे पानी न दें, पानी के बरतन को दूर रखकर छोड़ दें। जब वह बनिया पानी माँगे तो आप उससे कहें कि वह रहा पानी; तुम यहीं से अपनी प्यास बुझा लो। यदि बनिया कहे कि क्या पानी को दूर से देख कर प्यास बुझ सकती है तो आप कहें कि फिर दीपक को दूर से देखते रहने

से ठंड कैसे दूर हो सकती है ?" वणिक्-कन्या की युक्ति काम कर गई, और बनिये को एक हजार दीनारें देनी पड़ीं।

बनिया सोचने लगा कि यह वणिक् तो महामूर्ख है; इसे इतनी बुद्धि कहाँ से आई ? उसे मालूम हुआ कि यह तरकीब उसकी लड़की की बताई हुई है। बनिये को उसकी लड़की पर बहुत क्रोध आया, और उसने उसकी मँगनी माँगी। वणिक् ने सोचा कि यह बनिया मेरी लड़की से चिढ़ा हुआ है अतएव मेरी लड़की इसके घर जाकर सुखी नहीं रह सकती। लेकिन वणिक् की लड़की ने अपने पिता से कहा कि पिता जी, आप निश्चिन्त रहिये, यह मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। विवाह की तैयारियाँ होने लगीं। वणिक् की कन्या को पता लगा कि बनिये के घर कुँआ खोदा जा रहा है, बस उसने अपने घर से लेकर कुँए तक अन्दर ही अन्दर एक सुरंग खुदवाकर तैयार करा दी। तत्पश्चात् दोनों का विवाह हो गया।

विवाह होते ही बनिये ने अपनी बहू को कुँए में डलवा दिया। उसके सामने कपास का एक बड़ा गट्ठर लाकर रख दिया और कहा कि अब देखूंगा तुम्हारी पंडिताई। बनिये ने कहा, "देखो, मैं परदेश जा रहा हूँ। तुम इस कपास को कातकर खतम करना, और तुम्हारी पंडिताई की परीक्षा तब होगी जब मेरे द्वारा तुम्हारे तीन पुत्र हो जायेंगे, और तुम मुझे वापस घर ले आओगी।" जाते समय बनिया अपने घरवालों से कहता गया कि उसकी स्त्री को प्रतिदिन कोदों और चावल खाने को दिये जायें। इधर बनिया परदेश रवाना हुआ और उधर उसकी स्त्री सुरंग में से निकलकर अपने पिता के घर पहुँच गई। उसने अपने पिता से कहा, "पिता जी, आप इस रस्सी को पकड़े रहें, और जो भोजन मिले उसे नियम से लेते रहें।" बनिये की स्त्री गणिका का वेश बनाकर वहाँ से चल दी, और एक नगर में पहुँच कर वहाँ भाड़े पर मकान लेकर रहने लगी। एक दिन वहाँ उसने अपने पति को देखा और उसे अपने घर ले आई। बनिये

ने पूछा, "तुम कौन हो?" वह बोली, "मैं प्रायः पुरुषों से द्वेष करती हूँ, परन्तु न जाने तुम मुझे क्यों इतने प्रिय लगते हो?" बनिया गणिका के प्रेमपाश में फँस गया और दोनों एक जगह रहने लगे। कुछ समय बाद उनके तीन पुत्र हुए। गणिका ने जब देखा कि बनिये के पास धन नहीं रहा तो उसने उसे छोड़ दिया। कुछ समय बाद बनिया एक क़ाफ़ले के साथ वापस लौटा। वह वेश्या भी उसी क़ाफ़ले के साथ वापस आई। आते ही वह पहले अपने पिता के घर गई और रस्सी पकड़कर अपने तीनों पुत्रों को साथ लेकर सुरंग में से होती हुई कुँए में जाकर बैठ गई। बनिये ने अपने घर आकर अपनी स्त्री का कुशल-समाचार पूछा।



उसने कुँए में खटोली डालकर उसे बाहर निकालने का हुकुम दिया। रस्सी खींची गई। सब से पहले पहला पुत्र, फिर दूसरा और फिर अपने तीसरे पुत्र को साथ लेकर वह स्वयं कुँए में से बाहर निकली। बनिया अपनी स्त्री की चतुराई देखकर चकित हो गया, और उसने उसे अपने घर की मालकिन बना दिया।

जिनदास की स्त्री ने फिर तोते का एक पंख उखाड़ लिया और बोली कि नहीं तुम्हीं पंडित हो। तोते ने कहा, "पंडित मैं नहीं हूँ, पंडित है वह कोली की कन्या।" तोते ने कहानी कही—

किसी कोली की कन्या के माता-पिता परदेश चले गये थे, और वह घर में अकेली रह गई थी। रात को उसके घर में चोर घुस आये। वह लेटी-लेटी कहने लगी—"मैं अपने मामा के लड़के के साथ ब्याही जाऊँगी; फिर मेरे पुत्र होगा। उसका नाम रक्खूंगी चन्द्र। उसे आवाज देकर बुलाऊँगी "ऐ चन्द्र, जल्दी आ।" इतने में अपनी पड़ोसन की आवाज सुनकर पड़ौस का चन्द्र झट से वहाँ आ गया, और उसकी आवाज सुनकर चोर भाग गये।

जिनदास की स्त्री ने फिर तोते का एक पंख उखाड़ लिया। अब की बार तोते ने एक कुलपुत्र की कन्या की कथा सुनाई—

वसंतपुर नगर में जितशत्रु नामक राजा राज्य करता था। उसकी एक कन्या थी। राजा ने घोषणा कराई कि जो उसे असंभव बात को मनवा देगा, उसे वह बहुत-सा धन देगा। कुलपुत्र की कन्या ने अपने पिता को चिन्तित देखकर कहा, "पिता जी, यह काम मैं करूँगी, आप चिन्ता न करें।" कुलपुत्र की कन्या राजा के पास गई, और उसने अपनी कहानी शुरू की—

"राजन्, मैं काफ़ी उम्र तक कुँवारी रही। तत्पश्चात् मैं अपने मामा के लड़के को मँगनी में दे दी गई। मेरे माता-पिता परदेश चले गये थे। एक बार वे पाहुने आये; घर पर मैं अकेली थी। मैंने सोचा, "अब क्या करूँ ?" किसी प्रकार अतिथि-सत्कार किया। दुर्भाग्य से उन्हें रात को साँप ने काट लिया, और उनकी मृत्यु हो गई। मैं उन्हें श्मशान में ले गई। वहाँ गीदड़ आदि जानवरों के भयंकर शब्द सुनाई दे रहे थे। राजा बोला, "और तुम डरी नहीं ?" कुलपुत्र की कन्या ने कहा—"महाराज, ये सब बातें सच हों तब न ?" राजा बहुत

प्रसन्न हुआ और उसने बहुत सा इनाम देकर लड़की को बिदा किया।

इस प्रकार जिनदास की स्त्री, तोते का एक-एक पंख उखाड़ती गई और वह कहानी कहता गया। तोते ने सब मिलाकर पाँच सौ कहानियाँ सुनाईं। रात बीत गई, और जब तोते के एक भी पंख न रहा तो जिनदास की स्त्री ने उसे फेंक दिया। तोते को एक बाज ने उठा लिया। इतने में वहाँ एक दूसरा बाज आया, और दोनों में लड़ाई होने लगी। तोता एक अशोक-वाटिका में गिर पड़ा। वहाँ से उसे एक दासी-पुत्र ने उठा लिया। तोते ने मयूर में प्रविष्ट होकर उसे राजा से राज्य दिलवाया। तत्पश्चात् तोते ने सात दिन के लिये राज्य प्राप्त कर श्रावक और माहेश्वर दोनों कुलों को धर्म में दीक्षित कर उनका कल्याण किया।

२१–कोक्कास बढ़ई

सोप्पारय (सोपारा, ज़िला ठाणा) नगर में कोक्कास नामक एक बढ़ई रहता था। एक बार सोप्पारय में दुर्भिक्ष पड़ा और कोक्कास उज्जयिनी में जाकर रहने लगा। कोक्कास एक कुशल शिल्पकार था। उसने यंत्रमय कबूतर तैयार किये। इन्हें वह राजभवन में छोड़ देता, और वे वहाँ गंधशालि (एक प्रकार का विशिष्ट चावल) चुग कर लौट आते। एक दिन कोठारियों ने जाकर राजा से निवेदन किया कि महाराज, कबूतर कोठार के सब चावल खाये जाते हैं। राजा ने कबूतरों के मालिक की खोज में आदमी भेजे और वे कोक्कास को पकड़ कर राजा के पास ले आये। राजा कोक्कास की शिल्पकला देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसे अपने दरबार में रख लिया।

एक बार कोक्कास ने आकाश में उड़ने वाला एक सुन्दर गरुड़यंत्र बनाया। राजा अपनी महारानी को यंत्र में बैठाकर आकाश की सैर कर बड़ा खुश होता। जो राजा उसकी आज्ञा न मानते उनसे वह कहता कि यदि तुम लोग मेरी आज्ञा न मानोगे तो मैं आकाशमार्ग से आकर तुम्हें मार डालूंगा।

राजा अपनी महारानी को लेकर रोज़ आकाश की सैर करने जाता था। अपनी अन्य रानियों को वह कभी विमान में नहीं बैठाता था, अतएव वे महारानी से ईर्ष्या करती थीं। एक दिन उन्होंने यंत्र को पीछे लौटाने वाली कील को कहीं छिपा दिया। राजा अपनी महारानी को विमान में बैठाकर चल दिया। उड़ते-उड़ते जब विमान बहुत दूर निकल गया, और उसे पीछे लौटाने की आवश्यकता हुई तो मालूम हुआ कि कील ग़ायब है। विमान बड़े वेग से जा रहा था; उसके पंख टूट गये और वह पृथ्वी पर आकर गिर पड़ा।

विमान कलिंगदेश की भूमि पर गिरा। परन्तु खैर हुई कि किसी के चोट नहीं लगी। विमान को ठीक करने के लिये कोक्कास औज़ार लेने के लिये नगर में गया। उसने देखा कि एक रथकार रथ बना रहा है; रथ का एक पहिया बन चुका है। दूसरा बनना बाक़ी है। कोक्कास ने रथकार से औज़ार माँगे। रथकार ने कहा, "ये औज़ार रियासत के हैं, इन्हें बाहर ले जाने का हुकुम नहीं, अतएव मैं तुम्हें अपने औज़ार घर से लाकर देता हूँ।" रथकार औज़ार लेने चल दिया। इस बीच में कोक्कास ने उसके अधूरे पहिये को बनाकर तैयार कर दिया। रथकार ने देखा कि वह पहिया ऊपर कर देने से ऊपर उड़ने लगता है, नीचे कर देने से नीचे गिर जाता है, तथा उलटा रख देने से गिरता नहीं, जब कि उसके बनाये हुए पहिये में ये विशेषतायें नहीं हैं। रथकार समझ गया कि अवश्य ही इसे कोक्कास होना चाहिये। वह कुछ बहाना बनाकर वहाँ से चला गया और उसने जाकर राजा को खबर दी कि कोक्कास आया है। राजा ने उसे तुरंत पकड़वा मँगाया और उसे खूब पिटवाया। कोक्कास ने सब हाल सच-सच बता दिया। कलिंगराज ने राजा और रानी को गिरफ़्तार कर बन्दीगृह में डाल दिया।

कलिंगराज ने कोक्कास को आज्ञा दी कि वह उसके तथा राजकुमारों के रहने के लिये सात तले का एक सुन्दर भवन बनाये। कोक्कास ने शीघ्र ही भवन बनाकर तैयार कर दिया। तत्पश्चात् उसने उज्जयिनी में राजकुमार के पास शकुनयंत्र द्वारा समाचार भेजा कि वह शीघ्र ही कलिंग पर चढ़ाई कर दे, और अपने माता-पिता को छुड़ाकर ले जाये। कलिंगराज अपने पुत्रों के साथ नवनिर्मित भवन में आनन्द-पूर्वक समय व्यतीत कर रहा था कि इतने में उज्जयिनी के राजकुमार ने कलिंग को चारों ओर से घेर लिया और उस पर अधिकार कर लिया।

२२—चतुर रोहक

उज्जयिनी नगरी के पास नटों का एक गाँव था। वहाँ भरत नाम का एक नट रहता था। भरत की स्त्री अपने बालक रोहक को छुटपन में छोड़कर मर गई थी। कुछ समय पश्चात् नट ने दूसरा विवाह कर लिया। नट की नववधू अपने सौतेले पुत्र से मन ही मन कुढ़ती थी। रोहक जब बड़ा हुआ तो उसने सोचा कि उसे इसका मजा चखाना चाहिये। एक दिन रोहक ने अपने पिता से कहा, "पिता जी, देखिये यह जार दौड़ा जाता है।" भरत को यह सुनकर अपनी स्त्री पर शंका हो गई और वह अपनी स्त्री की उपेक्षा करने लगा।

एक दिन भरत की स्त्री ने रोहक को बुलाकर कहा, "बेटा, तुम्हें ऐसा करना उचित नहीं।" रोहक ने कहा, "माँ, तुम मुझे क्यों नहीं चाहती हो?" उसकी माँ ने कहा, "अब मैं तुम्हें अच्छी तरह रक्खूंगी।" कुछ दिन बाद रोहक ने अपने पिता से कहा, "पिता जी, यह देखिये यह रहा वह जार"। पिता के पूछने पर उसने अपनी उँगली की परछाईं की ओर इशारा कर दिया। पिता बहुत लज्जित हुआ, और उस दिन से अपनी स्त्री से प्रेम करने लगा।

एक दिन रोहक अपने पिता के साथ उज्जयिनी गया। पिता और पुत्र दोनों नगरी देख कर वापिस लौट रहे थे कि इतने में भरत को याद आया कि वह नगरी में कुछ भूल आया है। वह रोहक को शिप्रा नदी के किनारे बैठाकर फिर से नगरी में गया। इस बीच में रोहक ने नदी के किनारे उज्जयिनी का एक अत्यन्त सुन्दर चित्र बनाकर तैयार कर दिया। नगरी का राजा जब उधर से होकर जाने लगा तो रोहक ने उसे रोका कि महाराज, कृपा कर राजभवनों में से होकर न जाइए। राजा उज्जयिनी

की इतनी सुन्दर चित्र-रचना देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने रोहक का नाम-गाँव आदि पूछा। इतने में उसका पिता आ गया और दोनों अपने घर लौट आये।

उज्जयिनी के राजा के चार सौ निन्यानवे मंत्री थे; एक मंत्री की कमी थी। राजा ने सोचा कि जो उसकी परीक्षा में सफल होगा उसे वह प्रधान मंत्री का पद देगा। राजा ने गाँव वालों को कहला भेजा कि गाँव के बाहर जो बड़ी शिला पड़ी हुई है, उसका मंडप बनाकर तैयार करो। लोगों की समझ में न आया कि जमीन में गड़ी हुई शिला का मंडप कैसे बनाया जाय? जब रोहक को मालूम हुआ तो उसने अपने पिता से कहा, "पिता जी, यह कोई बड़ी बात नहीं है। पहले शिला के चारों तरफ़ की जमीन खोदिये, और फिर यथास्थान चार खंभे लगाकर शिला की नीचे की जमीन को खोद डालिये, बस शिला का मंडप बन जायगा। तत्पश्चात् उसे लीप-पोतकर सजा दीजिये।" लोगों ने ऐसा ही किया। राजा मंडप देखकर बहुत प्रसन्न हुआ।

कुछ दिन पश्चात् राजा ने गाँव वालों के पास एक मेंढ़ा भिजवाया, और कहला भेजा कि यह मेंढ़ा पन्द्रह दिन बाद भी वजन में उतना ही रहना चाहिये जितना इस समय है; न यह घटे न बढ़े। रोहक से पूछा गया। उसने मेंढ़े को एक भेड़िये के सामने बाँध दिया और उसे घास खिलाता रहा। घास खाते रहने से मेंढ़े का वजन घटा नहीं, और भेड़िये के डर से बढ़ा नहीं। इस प्रकार पन्द्रह दिन के पश्चात् राजा का मेंढ़ा उसे लौटा दिया गया।

कुछ दिन बाद राजा ने एक मुर्गा भेजा और आज्ञा दी कि बिना दूसरे मुर्गों की सहायता के इस मुर्गे को लड़ाकू बनाकर भेजो। रोहक ने मुर्गे के सामने एक बड़ा दर्पण लाकर रक्खा। मुर्गा दर्पण म अपने प्रतिबिंब को देखता और प्रतिबिंबित मुर्गे को अपना प्रतिस्पर्धी समझ कर उसके साथ युद्ध करता। कुछ समय बाद राजा का मुर्गा लौटा दिया गया।

एक दिन राजा ने कहलवाया कि तुम लोग बालू की रस्सी बनाकर भेजो। रोहक ने गाँव वालों से कहा कि तुम लोग राजा से जाकर कहो, "महाराज, यदि राजभवन में कोई बालू की रस्सी हो तो उसे नमूने के तौर पर भेज दीजिये, हम लोग उसे देखकर दूसरी रस्सी तैयार कर देंगे।"

कुछ दिन बाद राजा ने एक मरणप्राय बूढ़ा हाथी गाँव में भेजा और कहा कि इस हाथी का समाचार देते रहना। परन्तु यह आकर कभी न कहना कि हाथी मर गया है। संयोग से हाथी उसी रात को चल बसा। अगले दिन रोहक से पूछकर गाँव के लोगों ने राजा से जाकर निवेदन किया, "महाराज, हाथी न कुछ खाता है, न पीता है, और न उसका साँस ही चलता है?" राजा ने पूछा, "तो क्या हाथी मर गया है?" गाँववालों ने उत्तर दिया, "महाराज, यह तो हम नहीं कह सकते, आप ही के मुँह से यह शोभा देता है।"

एक दिन राजा ने कहलवाया कि गाँव के कुँए को यहाँ शीघ्र भेज दो। रोहक ने उपाय बताया कि तुम लोग राजा से जाकर कहो कि पहले आप नगर के कुँए को भिजवा दें; दोनों साथ-साथ चले आयेंगे।

कुछ दिन बाद राजा ने कहलवाया कि गाँव के पूर्व में स्थित वन को पश्चिम में बना दो। रोहक के कथनानुसार सब लोग वन के पूर्व में जाकर रहने लगे, अतएव वह वन गाँव के पश्चिम में हो गया।

एक दिन राजा ने हुकुम दिया कि बिना अग्नि के खीर पकाकर भेजो। रोहक ने उपाय बताया कि चावलों को बारीक करके सूर्य की किरणों से संतप्त कंडों या घास के ऊपर दूध-मिश्रित चावलों की थाली रख दो; खीर बनकर तैयार हो जायगी।

रोहक की बुद्धिमत्ता देखकर राजा बहुत चकित हुआ और उसने रोहक को अपने पास बुलाया। परन्तु राजा की शर्त थी कि रोहक न शुक्ल पक्ष में आये, न कृष्ण पक्ष में, न रात को, न दिन को, न छाया में, न धूप में, न आकाश में होकर, न पैदल चलकर, न गाड़ी-घोड़े पर

सवार होकर, न सीधे रास्ते से, न उल्टे रास्ते से, न नहाकर, न बिना नहाये, परन्तु आना उसे अवश्य चाहिये। जब रोहक को यह मालूम हुआ, तो उसने सुबह उठकर कंठ-स्नान किया, और गाड़ी के पहियों के बीच में एक मेंढे को जोतकर, उस पर सवार होकर, चलनी की छतरी लगाकर, एक हाथ में मिट्टी का पिंड लेकर, अमावस के दिन, संध्या के समय राजा के दर्शनार्थ चल पड़ा। रोहक को देखकर राजा बहुत चकित हुआ, और उसने उसका बहुत आदर-सत्कार किया। रोहक राजा के पास रहने लगा।

एक दिन राजा ने रात्रि के प्रथम प्रहर में रोहक से पूछा, "रोहक, तू जागता है या सोता है?" रोहक ने जवाब दिया, "महाराज, मैं जाग रहा हूँ।" राजा ने कहा, "तू क्या सोच रहा है?" रोहक बोला, "महाराज, सोचता हूँ कि पीपल के पत्ते का डंठल बड़ा होता है या उसके ऊपर का भाग?" राजा ने पूछा, "तो तुमने क्या सोचा?" रोहक ने जवाब दिया, "दोनों समान हैं।" यह कहकर रोहक सो गया।

तत्पश्चात् रात्रिके दूसरे प्रहर में राजा ने फिर रोहक से पूछा, "रोहक, तू जागता है या सोता है?" रोहक ने कहा, "मैं जाग रहा हूँ, और सोचता हूँ कि बकरी के पेट में गोल-गोल लेंडी कैसे पैदा हो जाती हैं?" राजा ने पूछा, "तुमने क्या सोचा?" रोहक ने जवाब दिया, "वायु के कारण पैदा हो जाती हैं।" यह कहकर रोहक फिर सो गया।

रात्रि के तीसरे प्रहर में राजा ने फिर रोहक से पूछा, "रोहक, तू सोता है या जागता है?" रोहक ने कहा, "मैं जाग रहा हूँ, और सोचता हूँ कि गिलहरी के शरीर पर कितनी काली रेखायें होती हैं और कितनी सफ़ेद? तथा उसका शरीर लम्बा होता है या उसकी पूंछ?" राजा ने पूछा, "तुमने क्या निर्णय किया?" रोहक बोला, "महाराज, जितनी उसके शरीर पर सफ़ेद रेखायें होती हैं, उतनी ही काली होती हैं; तथा उसका शरीर और पूंछ दोनों बराबर होते हैं।" यह कहकर रोहक फिर सो गया।

तत्पश्चात् रात्रि के चौथे प्रहर में राजा ने रोहक को आवाज दी। परन्तु रोहक गाढ़ निद्रा में सो रहा था। उसने कोई उत्तर नहीं दिया। राजा ने उसे छड़ी की नोक से जगाकर पूछा, "रोहक, सोते हो या जागते हो?" रोहक ने कहा, "महाराज, जाग रहा हूँ।" राजा ने पूछा, क्या सोच रहे हो?" रोहक ने उत्तर दिया, "मैं सोच रहा हूँ आपके कितने पिता हैं?" राजा ने पूछा, "तुम कितने समझते हो?" रोहक ने कहा, "महाराज, पाँच। सुनिये, आपका पहला पिता है राजा, दूसरा है कुबेर, तीसरा चांडाल, चौथा धोबी और पाँचवाँ बिच्छू।" राजा ने पूछा,—"सो कैसे?" रोहक ने कहा, "देखिये, आप न्याय पूर्वक राज्य का पालन करते हैं, इससे मालूम होता है आप राजा के पुत्र हैं; दान में आप कुबेर के समान हैं, इसलिए आप कुबेर के पुत्र हैं; क्रूरता में आप चांडाल के समान हैं, इसलिये आप चांडाल के पुत्र हैं; सर्वस्व हरण करने में आप धोबी के समान हैं, अतएव आप धोबी के पुत्र हैं, और सोते हुए को आप छड़ी की नोक से उठा सकते हैं, अतएव आप बिच्छू के पुत्र हैं।" राजा रोहक की बुद्धिमत्ता से अत्यन्त प्रसन्न हुआ, और उसे प्रधान मंत्री का पद दे दिया।

२३—इतना बड़ा लड्डू !

कोई कुँजड़ा अपने गाँव से ककड़ियों की टोकरी लेकर ककड़ियाँ बेचने चला। रास्ते में उसे एक धूर्त्त मिला। उसने कुँजड़े से पूछा, "भाई कुँजड़े, यदि कोई इन सब ककड़ियों को खा ले तो तुम उसे क्या दोगे ?" कुँजड़े ने उत्तर दिया, "उसे मैं इतना बड़ा लड्डू दूंगा जो दरवाजे के भीतर से न जा सके।" धूर्त्त ने उन सब ककड़ियों को चख चखकर जूंठा कर डाला, और कुँजड़े से कहा, "मैंने तुम्हारी सब ककड़ियाँ खा ली हैं; अब लड्डू लाओ।" कुँजड़े ने कहा, "तुमने मेरी ककड़ियाँ खाईं ही नहीं, फिर मैं तुम्हें लड्डू कैसे दूँ ?" धूर्त्त ने कहा, "विश्वास न हो तो तुम इन ककड़ियों को बाजार में ले जाकर इनकी परीक्षा कर लो। कुँजड़ा अपनी ककड़ियाँ लेकर बाजार पहुँचा। खरीदार जब ककड़ियाँ खरीदने आये तो वे ककड़ियों को देखकर कहने लगे कि ये तो खाई हुई ककड़ियाँ हैं। धूर्त्त ने कुँजड़े से अपना लड्डू माँगा। कुँजड़ा उसे लड्डू के बदले एक रुपया देने लगा, परन्तु धूर्त्त न माना। बढ़ते-बढ़ते कुँजड़ा उसे सौ रुपये देने को तैयार हो गया, परन्तु धूर्त्त ने कहा, "मुझे तो लड्डू ही चाहिये।"

कुँजड़े की समझ में नहीं आया कि वह क्या करे। इतने में एक दूसरे धूर्त्त से उसकी भेंट हुई। उसने कुँजड़े को एक युक्ति बताई। तदनुसार कुँजड़ा हलवाई की दुकान से एक लड्डू मोल लाया, और उसे दरवाजे के बीच में देहली के ऊपर रखकर कहने लगा, "चल, मेरे लड्डू चल।" परन्तु लड्डू अपनी जगह से टस से मस न हुआ। कुँजड़े ने और लोगों को बुला लिया और उनसे कहा, "देखो भाइयो, मैंने इस धूर्त्त को इतना बड़ा लड्डू देने का वादा किया था जो दरवाजे के अन्दर से न जा सके। लड्डू आपके सामने है; कितना भी कहने पर यह दरवाजे के अन्दर से नहीं जाता। यह लड्डू मैं इसे देने को तैयार हूँ, पर यह नहीं लेता।"

२४—दुर्बलों को न सताओ

किसी नगर में कोई पुरोहित रहता था। वह लोगों की धरोहर रखकर उसे वापिस नहीं देता था। एक बार कोई ग़रीब आदमी पुरोहित के घर धरोहर रखकर परदेश चला गया। वापिस आने पर जब उसने पुरोहित से अपनी धरोहर माँगी तो पुरोहित नट गया और कहने लगा कि मेरे यहाँ तुम्हारी कोई धरोहर नहीं है।

ग़रीब आदमी ने राजा के मन्त्री से जाकर कहा, "महाराज, पुरोहित के यहाँ मैं हज़ार रुपये की थैली रखकर गया था, माँगने पर अब वह मना करता है। कृपा करके बताइये क्या किया जाय।" मंत्री ने सब हाल जाकर राजा से कहा। राजा ने पुरोहित को बुलाकर उससे उस ग़रीब आदमी की थैली लौटा देने को कहा। परन्तु पुरोहित ने कहा, "महाराज, वह आदमी मुझे झूठे ही बदनाम करता फिरता है; उसने मेरे यहाँ कोई थैली नहीं रक्खी।" उधर राजा ने उस आदमी से पूछताछ की कि वह कौन से दिन थैली रखकर गया था, और कौन उसका गवाह है। उसने सब बातें ठीक-ठीक बता दीं जिससे राजा को विश्वास हो गया कि इस आदमी ने अवश्य पुरोहित के घर थैली रक्खी है।

एक दिन राजा ने पुरोहित को जुआ खेलने के लिये बुलाया। खेल-खेल में राजा ने उसके नाम की अँगूठी अपनी अँगूठी से बदल ली, और चुपके से उसे अपने आदमी को देकर पुरोहित की स्त्री के पास कहला भेजा कि पुरोहित जी ने वह हज़ार रुपये की थैली माँगी है जो एक आदमी अमुक दिन अमुक समय रख गया था। अपने पति के नाम की अँगूठी देखकर पुरोहित की स्त्री ने रुपयों की थैली निकालकर उसके

हवाले की। राजा ने उस थैली को अन्य कई थैलियों के बीच में रखकर उस आदमी को बुलाया और अपनी थैली उठा लेने को कहा। ग़रीब की थैली मिल गई, और वह राजा को असीस देता हुआ वहाँ से चला आया।

२५—लड़के बन्दर हो गये !

किसी गाँव में दो मित्र रहते थे। एक बार उन्हें कहीं से एक बड़ा खजाना मिला। कपटी मित्र ने सच्चे मित्र से कहा कि आज का मुहूर्त्त ठीक नहीं, इसलिये हम लोग कल आकर खजाना ले जायेंगे। सच्चे मित्र ने कहा, अच्छी बात है। इधर कपटी मित्र ने रात को जाकर वहाँ से खजाना निकाल लिया और उसकी जगह कोयले रख दिये।

अगले दिन सुबह दोनों मित्र खजाना लेने के लिये चले। वहाँ खोदकर देखा तो कोयले निकले ! इस पर कपटी मित्र ने कहा, "हाय रे भाग्य, खजाने के कोयले हो गये !" दूसरा मित्र समझ गया कि अवश्य ही यह इस धूर्त की चालाकी है। लेकिन उसने अपने मनोगत भावों को छिपाकर कहा, "मित्र क्या किया जाय, हम लोगों का भाग्य ही ऐसा है।"

कुछ समय बाद सच्चे मित्र ने अपने कपटी मित्र की एक मूर्त्ति बनवाई, और दो बन्दर पाले। वह प्रति दिन उस मूर्त्ति के ऊपर बन्दरों के खाने के लिये चीजें रख देता, और बन्दर उसके ऊपर चढ़कर सब चीजें खा जाते। एक दिन उसने भोजन के लिये अपने मित्र के दोनों लड़कों को निमंत्रित किया। जब लड़के भोजन के लिये आये तो उसने उन्हें कहीं छिपा दिया और अपने मित्र के पूछने पर कह दिया कि वे बन्दर बन गये हैं। लड़कों का पिता अपने लड़कों का पता लगाने के लिये जब अपने मित्र के घर आया तो उसके मित्र ने उसे उस मूर्त्ति की जगह बैठाकर उसके ऊपर बन्दर छोड़ दिये। बन्दर यथावत् किलकिलाहट करके उसके साथ क्रीड़ा करने लगे। इस पर उसके मित्र ने कहा, "मित्र, लो ये ही तुम्हारे दोनों लड़के हैं।" वह बोला, "यार, कहीं लड़के भी बन्दर बन सकते हैं ?" उसके मित्र ने जवाब दिया, "जैसे खजाने का कोयला बन जाता है, वैसे ही लड़के भी बन्दर बन जाते हैं, इसमें कोई आश्चर्य नहीं।"

२६–पढ़ो और गुनो भी

एक बार की बात है, किसी गुरू के दो शिष्य जंगल में लकड़ी लेने जा रहे थे। कुछ दूर जाने पर उन्हें हाथी के पैर दिखाई दिये। पहले शिष्य ने कहा, "ये पैर हथिनी के होने चाहिये।" दूसरे ने पूछा, "तुमने कैसे जाना ?" उसने उत्तर दिया, "उसका मूत्र देखकर।" "और वह हथिनी एक आँख से कानी होनी चाहिये।" दूसरे ने पूछा, "यह तुमने कैसे जाना ?" "क्योंकि उसने एक ही ओर के वृक्ष खाये हैं। और उसके ऊपर एक स्त्री और एक पुरुष सवार होने चाहिये।" दूसरे ने पूछा, "यह तुम्हें कैसे पता चला ?" "उनकी लघुशंका देखकर। और वह स्त्री गर्भवती होनी चाहिये।" दूसरे ने पूछा, "यह तुम्हें कैसे पता लगा ?" "क्योंकि लघुशंका करने के बाद वह स्त्री हाथ टेककर उठी थी। और उस स्त्री के पुत्र पैदा होना चाहिये, क्योंकि उसका दाहिना पैर भारी था। तथा वह लाल कपड़े पहने थी, क्योंकि आसपास के वृक्षों में लाल धागे लिपटे थे।" कुछ दूर जाने पर पता चला कि पहले शिष्य की सब बातें ठीक थीं।

आगे चलने पर उन्हें एक बुढ़िया मिली, जो सिर पर पानी का घड़ा लिये जा रही थी। बुढ़िया का पुत्र परदेश गया हुआ था। उसने इन लोगों को पंडित समझ कर पूछा, "महाराज, बताइये, मेरा पुत्र परदेश से कब लौटेगा ?" इसी समय बुढ़िया के सिर का घड़ा जमीन पर गिर पड़ा और उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये। यह देखकर दूसरे शिष्य ने कहा, "माँ, जान पड़ता है, तुम्हारा पुत्र मर गया है।" पहले शिष्य ने कहा, "नहीं माँ, तेरा पुत्र कुशलपूर्वक है, और वह तेरे घर आया हुआ है।" बुढ़िया ने घर जाकर देखा तो सचमुच उसका पुत्र घर पर आया हुआ

था। वह लौटकर आई, और सगुन विचारने वाले पंडित जी को एक जोड़ा और कुछ रुपये देकर उसका बहुत सम्मान किया।



लकड़ी लेकर दोनों शिष्य अपने गुरू के पास वापिस पहुँचे। दूसरे शिष्य ने अपने गुरू से कहा, "गुरू जी, आप मुझे ठीक-ठीक नहीं पढ़ाते। यही कारण है कि मेरे साथी की सब बातें ठीक उतरती हैं, और मेरी नहीं।"

इस पर गुरु ने कहा, "भैया, इसमें मेरा क्या दोष है ? तुम पढ़कर गुनते नहीं, जब कि तुम्हारा साथी पढ़कर गुनता है।" पहले शिष्य ने बताया कि उसने जब घड़े को फूटकर गिरते हुए देखा तो समझा कि जैसे मिट्टी से बना हुआ घड़ा फूटकर मिट्टी में मिल जाता है, इसी प्रकार इस बुढ़िया को अपने पुत्र से शीघ्र ही मिलाप होना चाहिये।

२७—राजा का न्याय

एक बार कोई आदमी अपने किसी मित्र से हल में जोतने के लिये बैल माँगकर ले गया, और शाम को अपना काम खतम होने पर उन्हें उसके बाड़े में छोड़कर चला गया। जब वह आदमी बैल लौटाकर लाया तो उसका मित्र भोजन कर रहा था। उसने अपने बैल देख लिये थे, मगर वह उस समय कुछ बोला नहीं। थोड़ी देर बाद बैल बाड़े में से निकलकर कहीं चले गये, और उनका कोई पता न चला। भोजन करने के पश्चात् बैलों के मालिक ने देखा कि बैल बाड़े में नहीं हैं। उसने अपने मित्र को पकड़ लिया, और राजा के पास चलने को कहा।

जाते-जाते रास्ते में उन्हें एक घुड़सवार मिला। अचानक घुड़सवार का घोड़ा उसे गिराकर भाग गया। घुड़सवार चिल्लाया, "मारो मारो, पकड़ो पकड़ो।" इतने में अभियुक्त ने घोड़े के ऐसी जोर से लाठी फेंक-कर मारी कि वह उसके मर्मस्थान में लगी, और घोड़ा वहीं गिरकर मर गया। घुड़सवार ने उसे अपने घोड़े को मारने के अपराध में पकड़ लिया, और उसे राजा के पास लेकर चला।

तीनों आदमी साथ-साथ चल दिये। रात को तीनों नगर के बाहर ठहरे। वहाँ कुछ नट भी ठहरे हुए थे। रात को लेटे-लेटे अभियुक्त ने सोचा कि अवश्य ही राजा मुझे आजन्म कारावास की सजा देगा, अतएव मैं क्यों न गले में फाँसी लटकाकर मर जाऊँ? बस वह अपने गले में फन्दा लगाकर बरगद के पेड़ के ऊपर लटक गया। दुर्भाग्यवश रस्सी टूट गई, और अभियुक्त नटों के नेता के ऊपर आकर गिरा जिससे नेता मर गया। बस नटों ने भी उसे पकड़ लिया, और राजा के पास लेकर चल दिये।

राजा की सभा में पहुँचकर तीनों अभियोगियों ने अपने-अपने बयान दिये, और राजा से प्रार्थना की कि अभियुक्त को उचित दंड मिलना चाहिये। राजा ने अभियुक्त से पूछा,। उसने सब बातें सच-सच कह बताईं। इस पर राजा ने बैलों के मालिक से कहा कि अभियुक्त तुम्हारे बैल वापिस देगा, परन्तु पहले तुम उसे अपनी आँखें निकाल कर दो। घोड़े के मालिक से कहा कि अभियुक्त तुम्हें घोड़ा वापिस देगा, परन्तु पहले तुम उसे अपनी जीभ काटकर दो। नटों से कहा कि अभियुक्त को प्राणदंड दिया जायगा, परन्तु इसके पहले वह बरगद के वृक्ष के नीचे सो जायगा, और तुम में से कोई अपने गले में फाँसी लटका कर वृक्ष के ऊपर से गिरने को तैयार होओ।

२८—चतुराई का मूल्य

किसी राजा की चित्रशाला में अनेक चित्रकार काम करते थे। उनमें एक बूढ़ा चित्रकार भी था। उसकी कन्या कनकमंजरी अपने पिता के लिये प्रति दिन घर से भोजन लाती थी। एक दिन वह भोजन लिये आ रही थी कि रास्ते में उसे एक घुड़सवार मिला जो बड़ी तेजी से अपना ोड़ा दौड़ाये लिये जा रहा था। कनकमंजरी घोड़े के नीचे आने से बच गई, और बड़ी कठिनता से प्राण बचाकर अपने पिता के पास पहुँची। कनकमंजरी जब चित्रशाला में पहुँची तो उसका पिता शौच गया हुआ था। बैठे-ैठे उसने फ़र्श पर मोर का एक सुन्दर पंख चित्रित कर दिया। राजा उस समय चित्रशाला में मौजूद था। उसने दूर से उस पंख को देखा, और उसे उठाने के लिये हाथ बढ़ाया, परन्तु उसका हाथ जोर से फ़र्श में लगा, और पंख उठाने का उसका प्रयत्न निष्फल हुआ। कनकमंजरी बैठी बैठी यह देख रही थी। उसे हँसी आ गई। राजा के पूछने पर उसने कहा, "महाराज, तीन पैर से चौकी खड़ी नहीं होती, उसके लिये चौथे पैर की आवश्यकता होती है। भाग्य से चौथे पैर आप मिल गये।" राजा ने पूछा, "यह कैसे ?" कनकमंजरो ने कहा, "महाराज, मैं रास्ते में चली आ रही थी। एक घुड़सवार बड़ी तेजी से ोड़ा दौड़ाये ला रहा था। उसे इतनी समझ नहीं कि यदि कोई आदमी घोड़े के नीचे आ जायगा तो क्या होगा ? मैं बड़ी कठिनता से यहाँ तक पहुँच सकी हूँ। यह घुड़सवार पहला पैर हुआ। दूसरा पैर है राजा जिसके यहाँ कोई क़ायदा-क़ानून नहीं। उसको चित्रसभा में अनेक चित्रकार काम करते हैं। एक-एक चित्रकार के कुटुंब में कमानेवाले बहुत-से लोग हैं, जब कि मेरे पिता के कुटुंब में कमानेवाला अकेला मेरा पिता है। परन्तु

राजा को इस बात का जरा भी खयाल नहीं, वह सब को एक-सा वेतन देता है। तीसरा पैर है स्वयं मेरा पिता। आय की अपेक्षा उसका व्यय अधिक है, और जब से उसने इस चित्रशाला में काम करना शुरू किया है, उसने अपना पूर्व संचित सब धन खा डाला है, तथा जब मैं ठंडा-बासी भोजन लेकर आती हूँ, वह शौच चल देता है?" राजा ने पूछा, "कनकमंजरी, तुमने मुझे चौथा पैर कैसे कहा!" वह बोली, "राजन्, यह हर कोई सोच सकता है कि फ़र्श के अन्दर मोर का पंख कहाँ से आयेगा? फिर आपने उसे उठाने का प्रयत्न क्यों किया?" राजा ने कहा, "तुम ठीक कहती हो।" यह कहकर राजा अपने भवन में चला गया, और कनकमंजरी अपने पिता को भोजन खिला कर घर लौट गई।

अगले दिन राजा ने कनकमंजरी की मँगनी के लिये दूत भेजा। कनकमंजरी के माता-पिता ने कहला भेजा कि हम लोग अत्यन्त दरिद्र हैं; हम राजा का स्वागत नहीं कर सकते। राजा ने उत्तर में कहलवाया कि आप लोग इसकी कुछ चिन्ता न करें। राजा ने कनकमंजरी का घर धन से भर दिया, और शुभ मुहूर्त में दोनों का विवाह हो गया।

राजा नियमानुसार क्रम-क्रम से अन्तःपुर की रानियों के पास जाता था। कनकमंजरी ने सोचा कि इस तरह तो बहुत समय बाद उसकी बारी आयेगी। उसने दासी को सिखला दिया कि जब रात को राजा आये तो उस समय तू मुझसे कोई कहानी सुनाने के लिये कहना। दासी के कहने पर कनकमंजरी ने कहानी कहना आरंभ किया—

"किसी लड़की की तीन स्थानों से मँगनी आई। एक जगह की मँगनी लड़की की माता ने, दूसरी जगह की उसके भाई ने और तीसरी जगह की मँगनी उसके पिता ने ले ली। विवाह की तिथि निश्चित हो गई, और तीनों स्थानों से बारात आ पहुँची। दुर्भाग्यवश जिस रात को विवाह की भाँवर पड़नेवाली थी, उस रात को लड़की को साँप ने काट लिया और वह मर गई। लड़की के तीनों वरों में से एक वर तो लड़की

के साथ ही चिता में जल मरा, दूसरे वर ने अनशन आरंभ कर दिया, और तीसरे ने देवाराधन कर संजीवन मंत्र प्राप्त किया, जिससे उसने लड़की को तथा उसके वर को पुनः जीवित कर दिया।" "अब तीनों वर आकर उपस्थित हो गये, और लड़की को माँगने लगे। बताइये, राजन्, तीनों में से लड़की किस को मिलनी चाहिये?" राजा बहुत देर तक सोचने के बाद भी जब संतोषजनक उत्तर न दे सका तो उसने कनकमंजरी से कहा, "प्रिये, तुम्हीं बताओ।" कनकमंजरी ने कहा, "राजन्, रात बहुत हो गई है, इस समय मेरी आँखों में नींद भर रही है, कल कहूँगी।" दूसरे दिन राजा ने फिर पूछा। कनकमंजरी ने कहा, "देखिये, स्वामिन्, जिसने उस लड़की को जीवनदान दिया, वह उसका पिता हुआ, और जो कन्या के साथ जीवित हुआ वह उसका भाई हुआ। अब बाक़ी रहा तीसरा वर जिसने अनशन किया था, कन्या उसे ही दी जानी चाहिये।"

राजा को कनकमंजरी की कहानी बहुत पसंद आई। उसने कहा, "प्रिये, कोई दूसरी कहानी कहो।" कनकमंजरी ने कहा—

"किसी राजा के भौंरे में बैठकर सुनार लोग रनवास की रानियों के गहने घड़ते थे। भौंरे में हमेशा अँधेरा रहता था, अतएव वहाँ मणि और रत्नों द्वारा प्रकाश किया जाता था। एक बार एक सुनार ने दूसरे सुनार से पूछा, "इस समय रात है या दिन?" उसने उत्तर दिया, "रात।" "कहिये, राजन्, चन्द्र-सूर्य के प्रकाश को देखे बिना सुनार ने कैसे जान लिया कि रात है?" जब राजा बहुत सोचने पर भी न बता सका तो उसने कनकमंजरी से पूछा। कनकमंजरी ने कहा, "राजन्, अब रात बहुत हो गई है, कल कहूँगी।" अगले दिन राजा ने फिर पूछा। कनकमंजरी ने कहा, "राजन्, रात्रि के अन्धकार को देखकर सुनार ने बता दिया कि इस समय रात है।"

राजा ने कनकमंजरी से कोई और कहानी कहने को कहा। वह बोली—

"किसी राजा के पास दो चोर लाये गये। उसने दोनों को एक सन्दूक़ में बन्द करके समुद्र में छोड़ दिया। कुछ समय बाद सन्दूक़ किनारे पर जाकर लगा। सन्दूक़ को देखकर बहुत से आदमी इकट्ठे हो गये। जब सन्दूक़ खोला गया तो उसमें से दो आदमी निकले। लोगों ने उनसे पूछा, "भाई, तुम लोगों को समुद्र में बहते-बहते कितने दिन हो गये ?" उनमें से एक आदमी ने जवाब दिया, "यह चौथा दिन है।" "बताइये, राजन्, सन्दूक़ में बैठे आदमी को इस बात का कैसे पता लग गया ?" जब राजा की कुछ समझ में न आया तो उसने कनकमंजरी से पूछा। उसने कहा, "राजन्, इस समय मुझे नींद आ रही है, कल कहूँगी।" अगले दिन कनकमंजरी ने बताया, "उस आदमी को चौथिया ज्वर आता था, इसलिये उसे मालूम हो गया कि चौथा दिन है।"

राजा ने दूसरी कहानी कहने को कहा। कनकमंजरी बोली—

"दो सौतें थीं; वे एक दूसरे का विश्वास नहीं करती थीं। एक के पास कुछ बहुमूल्य रत्न थे, और वह उन्हें अपनी सौत के डर से जगह-जगह छिपाती फिरती थी। एक दिन उसने अपने रत्नों को एक घड़े में रख दिया, और ऊपर से घड़े को लीप दिया जिससे रत्न दिखाई न दें। दूसरी सौत ताड़ गई। उसने घड़े में से रत्न निकाल लिये, और घड़े को उसी तरह लीपकर छोड़ दिया। पहली सौत जब वापिस आई तो वह घड़े को देखकर समझ गई कि उसके रत्न चोरी चले गये हैं।" "बताइये, राजन्, घड़े को बिना खोले वह स्त्री यह कैसे जान गई कि उसके रत्न किसी ने चुरा लिये हैं।" राजा जब संतोषजनक उत्तर न दे सका तो उसने कनकमंजरी से पूछा। कनकमंजरी ने कहा, "रात बहुत हो गई है, कल कहूँगी।" अगले दिन उसने बताया, "महाराज, वह घड़ा काँच का था, अतएव उसे ऊपर से लीप-पोत देने पर भी उसके अन्दर की वस्तु साफ़ दिखलाई देती थी।"

राजा के कहने पर कनकमंजरी ने दूसरी कहानी कही—

"किसी राजा के चार सर्वश्रेष्ठ पुरुष थे—एक ज्योतिषी, एक बढ़ई, एक योद्धा और एक वैद्य। एक बार राजा की कन्या को कोई विद्याधर उठाकर ले गया, और बहुत ढूंढ़ने पर भी उसका कोई पता न लगा। राजा ने घोषणा कर दी कि जो राजकुमारी का पता लगाकर देगा वह उसे ही दे दी जायगी। राजा के चारों पुरुष राजकुमारी की खोज में चल दिये। ज्योतिषी ने अपना शास्त्र देखकर बताया कि राजकुमारी अमुक दिशा में गई है। बढ़ई ने एक वायुयान तैयार किया, जिसमें चारों आदमी बैठकर आकाशमार्ग में रवाना हो गये। कुछ दूर जाने पर उन्हें वह विद्याधर मिला जो राजकुमारी को हरकर ले गया था। योद्धा ने उसे देखते ही मार डाला। परन्तु विद्याधर ने मरते-मरते राजकुमारी का सिर धड़ से अलग कर दिया। वैद्य ने अपनी संजीवनी औषधि द्वारा राजकुमारी को शीघ्र ही जिला दिया, और वे चारों पुरुष उसे लेकर राजदरबार में उपस्थित हुए। राजा ने सब हाल सुना और राजकुमारी उन चारों पुरुषों को दे दी गई। राजकुमारी ने सोचा कि मैं चारों पुरुषों की किस तरह हो सकती हूँ, अतएव वह अग्निप्रवेश करने के लिये तैयार हो गई और बोली कि जो कोई मेरे साथ अग्नि में प्रवेश करने के लिये तैयार होगा मैं उसी के साथ विवाह करूँगी।" कनकमंजरी ने राजा से पूछा, "कहिये, राजन्, राजकुमारी के साथ अग्नि में कौन प्रवेश करेगा, और वह किसके साथ विवाह करेगी ?" राजा जब कुछ उत्तर न दे सका तो उसने रानी से पूछा, "प्रिये, तुम्हीं बताओ।" कनकमंजरी ने कहा, "कल कहूँगी।" दूसरे दिन उसने बताया, "राजन्, अपने निमित्त-ज्ञान से ज्योतिषी जी जान गये कि राजकुमारी मरनेवाली नहीं है, अतएव वे उसके साथ अग्नि में प्रवेश करने के लिये तैयार हो गये; अन्य तीनों ने अपनी जान को जोखिम में डालना ठीक न समझा। अब जहाँ राजकुमारी और ज्योतिषी जी चिता में प्रवेश करनेवाले थे उसके नीचे एक बड़ी सुरंग खुदवाई गई। चिता में लकड़ियाँ भरकर जब उसमें आग

लगाई तो दोनों सुरंग में से निकल कर भाग गये। तत्पश्चात् दोनों का विवाह हो गया।"

राजा कहानी सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने रानी से दूसरी कहानी कहने को कहा। रानी बोली—

"एक बार कोई स्त्री किसी भोज में जा रही थी। उसने एक साहुकार के यहाँ कुछ रुपये रखकर उनके बदले में हाथों में पहनने के कड़े लिये। उन कड़ों को उसने अपनी लड़की को पहना दिया। भोज समाप्त हो गया, परन्तु स्त्री ने साहुकार को कड़े नहीं लौटाये। धीरे-धीरे कई बरस हो गये। जब साहुकार कड़े माँगता, स्त्री कह देती, "हाँ दूंगी।" कुछ समय बाद लड़की सयानी हो गई और उसके हाथों में से कड़ों का निकलना कठिन हो गया। स्त्री ने साहुकार से कहा, "सेठ जी, कड़े छोड़ दो, मैं तुम्हें और रुपये दे दूंगी।" पर साहुकार न माना। उसने कहा, "मुझे तो अपने कड़े चाहिये, मैं रुपये नहीं चाहता।" स्त्री ने कहा, "सेठ जी, "हम आपको दूसरे कड़े बनवाकर दे देंगे, हमारे ऊपर कृपा कीजिये।" परन्तु साहुकार ने कहा, "नहीं, मैं तो वे ही कड़े लूंगा।" कनकमंजरी ने कहा, "कहिये, राजन्, क्या उपाय किया जाय जिससे उस ग़रीब स्त्री का इस आपत्ति से छुटकारा हो सके।" राजा बोला, "प्रिये, तुम्हीं बताओ।" कनकमंजरी ने कहा, "कल कहूँगी।" अगले दिन उसने कहा, "यदि साहुकार उन्हीं कड़ों को माँगने पर तुला है, तो स्त्री को कहना चाहिये कि मैं तुम्हारे वही कड़े दूंगी, लेकिन तुम पहले मेरे वही रुपये लाकर दो।"

कनकमंजरी ने और भी बहुत सी कहानियाँ कहीं, और वह छः महीने तक राजा को अपने पास रोके रही। इस पर अन्य रानियाँ उससे बहुत ईर्ष्या करने लगीं, और उसे जादूगरनी समझने लगीं। सब ने मिलकर राजा से शिकायत की, परन्तु राजा ने किसी की न सुनी, और कनकमंजरी की चतुराई से प्रसन्न होकर उसे पटरानी के पद पर अभिषिक्त किया।

२९—ईर्ष्या मत करो

कोई बुढ़िया गोबर पाथ-पाथ कर अपनी गुज़र करती थी। एक बार उसने किसी व्यन्तर देव की आराधना की, और उसकी कृपा से उसके गोबर के सब उपले रत्न बन गये। बुढ़िया खूब धनवान् हो गई। उसने चार कोठों का एक सुन्दर भवन बनवा लिया, और सुख से रहने लगी। एक दिन बुढ़िया के घर उसकी एक पड़ौसन आई, और उसने बातों-बातों में सब पता लगा लिया कि बुढ़िया इतनी जल्दी कैसे धनी बन गई। बस उस ने भी व्यंतर देव की आराधना शुरू कर दी। व्यंतरदेव प्रसन्न होकर उपस्थित हुआ और उसने वर माँगने को कहा। पड़ौसन ने कहा, "मैं चाहती हूँ कि जो वस्तु तुम बुढ़िया को दो वह मेरे दुगुनी हो जाय।"

वही हुआ। जो वस्तु बुढ़िया माँगती, उसको पड़ौसन के घर दुगुनी हो जाती। बुढ़िया के घर चार कोठों का एक घर था तो उसकी पड़ौसन के दो थे। इसी प्रकार और भी जो सामान बुढ़िया के था, उससे दुगुना उसकी पड़ौसन के घर था। बुढ़िया को जब इस बात का पता लगा तो वह अपने मन में बहुत कुढ़ी। उसने व्यंतर से वरदान माँगा कि उसका चार कोठों वाला घर गिर पड़े और उसके स्थान पर एक घास की कुटिया बन जाय। उसकी पड़ौसन के भी दोनों भवन नष्ट हो गये और उसकी जगह घास की दो कुटियाँ बन गईं। तत्पश्चात् बुढ़िया ने दूसरा वर माँगा कि उसकी एक आँख फूट जाय। उसकी पड़ौसन की दोनों आँखें फूट गईं। तत्पश्चात् बुढ़िया ने कहा, "मैं एक पैर से लँगड़ी, और एक हाथ से लूली हो जाऊँ।" फलत: उसकी पड़ौसन के दोनों हाथ और दोनों पाँव टूट गये। पड़ौसन बिचारी पड़ी-पड़ी सोचती कि यदि मैं बुढ़िया के धन को देखकर ईर्ष्या न करती तो मेरी यह दशा न होती।

३०—अपना-अपना पुरुषार्थ

किसी नगर में चार मित्र रहते थे,—एक राजकुमार, एक मंत्री-पुत्र, एक श्रेष्ठि-पुत्र, और एक वणिक्-पुत्र। एक बार चारों मित्र इकट्ठे होकर बोले कि बताओ कौन कैसे जीता है? राजकुमार ने कहा, "मैं अपने पुण्य-प्रताप से जीता हूँ"; मंत्री-पुत्र ने कहा, "मैं अपने बुद्धिबल से जीता हूँ"; श्रेष्ठि-पुत्र ने कहा, "मैं अपने रूप से जीता हूँ"; वणिक्-पुत्र ने कहा, "मैं अपनी चतुराई से जीता हूँ।"

एक बार चारों मित्र परदेश गये और किसी अज्ञात नगर में पहुँच कर वहाँ एक उद्यान में ठहरे। वणिक्-पुत्र को कहा गया कि वह शीघ्र ही भोजन की व्यवस्था करे। वणिक्-पुत्र बाजार में गया और एक वृद्ध बनिये की दुकान पर पहुँचा। बनिये की दुकान पर बहुत माल बिकता था, इसलिये उसकी दुकान पर बहुत भीड़ रहती थी। संयोगवश उस दिन कोई उत्सव था, और उसकी दुकान पर इतनी अधिक भीड़ हो गई थी कि वह बनिया सब ग्राहकों को नहीं निबटा सकता था। वणिक्-पुत्र उसकी दुकान पर पहुँच कर ग्राहकों को नमक, घी, तेल, गुड़, सूंठ, मिरच आदि तोल-तोल कर, पुड़िया में बाँध-बाँध कर देने लगा। शाम को बनिये ने हिसाब लगाया तो उसे बहुत लाभ हुआ। उसने वणिक्-पुत्र को भोजन के लिये निमंत्रित किया। लेकिन उसने कहा कि उसके तीन साथी और हैं। बनिये ने उसके सब साथियों को बुलाकर उनका भोजन, तांबूल आदि से सत्कार किया, और उसे पाँच रुपये भेंट देकर सम्मान पूर्वक बिदा किया।

दूसरे दिन श्रेष्ठि-पुत्र की बारी आई। वह अपना शृंगार करकर वेश्याओं के मुहल्ले में पहुँचा। उस मुहल्ले में पुरुषों से द्वेष करनेवाली

देवदत्ता नामक एक वेश्या रहती थी, जो किसी के वश में न आती थी। देवदत्ता श्रेष्ठि-पुत्र के रूप को देखकर बड़ी विस्मित हुई, और अपनी दासी को भेजकर उसने उसे बुलवाया। श्रेष्ठि-पुत्र ने कहा कि उसके तीन साथी और हैं। वेश्या ने सब को बुलवाकर उनका भोजन आदि से सत्कार किया और अपने अतिथि को सौ रुपये भेंट किये।

तीसरे दिन मंत्री-पुत्र की बारी थी। मंत्री का पुत्र नगर के न्यायालय में पहुँचा। न्यायालय में उस समय एक मुक़दमा चल रहा था—दो सौतों के बीच झगड़ा था। एक सौत के पुत्र था, दूसरी के नहीं। जिस के पुत्र नहीं था, वह पुत्रवाली सौत के लड़के को बड़े लाड़-चाव से रखती थी। धीरे-धीरे वह लड़का उससे इतना हिल गया कि वह अपनी माँ के पास भी न जाता था। एक दिन किसी बात पर दोनों में लड़ाई हो गई। दोनों कहने लगीं लड़का मेरा है। न्यायाधीश बहुत कोशिश करने पर भी न जान सका कि लड़के की असली माँ कौन-सी है? मंत्री-पुत्र ने सब मुक़दमा सुनने के पश्चात् न्यायाधीश से कहा कि यदि आपको आज्ञा हो तो मैं इस मुक़दमे का फ़ैसला करूँ। मंत्री-पुत्र ने दोनों सौतों को बुलाकर कहा कि अगर तुम लोग सच-सच नहीं बताती हो तो हम अभी लड़के के दो टुकड़े करके दोनों को आधा-आधा बाँट देते हैं। यह सुनते ही लड़के की माँ रोकर कहने लगी, "सरकार, मुझे अपना पुत्र नहीं चाहिये, इसे मेरी सौत को ही दे दिया जाय। अगर यह जीता रहा तो कम से कम मैं इसे देख तो लिया करूँगी। न्यायाधीश को समझने में ज़रा भी देर न लगी कि पुत्र किसका है। मंत्री-पुत्र का बहुत सम्मान हुआ, और उसे एक हज़ार रुपये भेंट देकर बिदा किया।

तत्पश्चात् राजकुमार की बारी आई। राजकुमार अपने भाग्य के भरोसे उठकर चल दिया। संयोगवश उस दिन नगर का राजा मर गया था, और उसके कोई पुत्र नहीं था जिसे राजगद्दी पर बैठाया जा सके। राजकुमार एक वृक्ष की छाया के नीचे बैठा हुआ था कि इतने में वहाँ एक

घोड़ा आया और उसके सामने खड़ा होकर हिनहिनाने लगा। कर्मचारी लोग राजकुमार को घोड़े पर चढ़ाकर नगर में ले गये और उसे राजगद्दी पर बैठा दिया। राजकुमार ने अपने साथियों को भी बुला लिया, और सब बड़े आनन्द से रहने लगे।

३१—गीदड़ की राजनीति

एक बार की बात है, किसी गीदड़ ने मरा हुआ एक हाथी देखा। वह सोचने लगा, "यह मुझे बड़े भाग्य से मिला है, इसे निश्चिन्त होकर खाऊँगा।" इतने में वहाँ एक सिंह आ गया। उसने पूछा, "क्यों भानजे, अच्छे तो हो ?" गीदड़ ने उत्तर दिया, "जी हाँ, मामा जी, आपकी दया है।" सिंह ने पूछा, "यह किसने मारा है ?" गीदड़ ने कहा, "व्याघ्र ने।" सिंह ने सोचा कि अपने से छोटे द्वारा मारे हुए शिकार को नहीं खाना चाहिये, और वह वहाँ से चला गया। इतने में वहाँ व्याघ्र आ पहुँचा। व्याघ्र के पूछने पर गीदड़ ने कह दिया कि यह सिंह ने मारा है। व्याघ्र पानी पीकर चलता बना। थोड़ी देर बाद वहाँ एक कौआ आया। गीदड़ ने सोचा कि यदि इसे न दूँगा तो यह काँव-काँव करेगा और इसकी आवाज़ सुनकर बहुत से कौए इकट्ठे हो जायेंगे, और फिर बहुत से गीदड़ आदि जानवर आ जायेंगे; मैं किस-किस को रोकूंगा। अतएव इसे कुछ देकर टालना ही अच्छा है। गीदड़ ने कौए की तरफ़ मांस का एक टुकड़ा फेंक दिया और कौआ उसे लेकर उड़ गया। तत्पश्चात् वहाँ एक गीदड़ आया। उसने सोचा यह तो बराबरी का है, इसलिये इसे मार भगाना ही ठीक है। बस उसने भृकुटि चढ़ाकर गीदड़ के ज़ोर से एक लात जमाई, और वह गीदड़ वहाँ से भाग गया।

सच कहा है—

उत्तमं प्रणिपातेन, शूरं भेदेन योजयेत्।
नीचमल्पप्रदानेन, समतुल्यं पराक्रमैः॥

अर्थात् उत्तम पुरुषों को नम्रता से, शूरों को भेद से, नीच पुरुषों को थोड़ा दे करके तथा समान वय वालों को पराक्रम से जीते।

३२—नाक काट ली !

एक बार की बात है, गिरिपुष्पित नगर में सिंह नामक एक आचार्य पधारे। उन दिनों नगर में सीवइयों (सेवकिका) का उत्सव मनाया जा रहा था।

अपने नित्य कर्मों से निवृत्त होकर आचार्य के तरुण शिष्य आपस में वार्तालाप कर रहे थे। इस बीच में एक ने कहा, "हम लोगों में ऐसा कौन है जो कल प्रातःकाल सीवइयाँ ला सके ?" गुणचन्द्र नामक शिष्य ने कहा, "मैं लाऊँगा।" बस प्रातःकाल गुणचन्द्र अपना नन्दीपात्र लेकर भिक्षा के लिये चल दिया। वह सीधा सुलोचना नामक एक गृहिणी के घर पहुँचा और उससे सीवइयाँ माँगी; परन्तु सुलोचना ने सीवइयाँ देने से इन्कार कर दिया।

गुणचन्द्र को मालूम हुआ कि वह घर विष्णुमित्र का है, और वह अपने मित्रों की गोष्ठी में बैठा हुआ है। गुणचन्द्र वहीं पहुँचा, और पूछने लगा कि विष्णुमित्र किसका नाम है ? विष्णुमित्र के साथियों ने कहा, "महाराज, आप तो साधु ठहरे, आपको विष्णुमित्र से क्या काम ?" गुणचन्द्र ने कहा, "मुझे उससे कुछ काम है ?" उसके साथियों ने कहा, "महाराज, वह महा कृपण है, वह आपको कुछ न देगा, इसलिये आपको जो चाहिये, हम लोगों से कहिये।"

इतने में विष्णुमित्र आगे बढ़कर बोला, "महाराज, मेरा नाम विष्णुमित्र है, आपको जो चाहिये कहिये, मैं दूंगा। ये लोग मजाक़ कर रहे हैं।" गुणचन्द्र ने कहा, "यदि तुम अपनी स्त्री के दास नहीं हो तो कहो, मैं तुमसे कुछ माँगूं।" इस पर गुणचन्द्र ने स्त्री-दासों की कथा सुनाई—

किसी गाँव में एक पुरुष रहता था। वह अपनी स्त्री की आज्ञा में

चलता था। सुबह उठकर जब उसे भूख लगती, वह अपनी स्त्री से भोजन माँगता। वह लेटी-लेटी उससे कहती, "देखो मुझे इस समय आलस्य आ रहा है; तुम उठकर चूल्हे में से राख निकाल दो, पड़ौस में से आग लाकर चूल्हे में जला दो; चूल्हे पर खाना चढ़ा दो और जब भोजन पककर तैयार हो जाय तो मुझे कहना, मैं उठकर परोस दूंगी।" पति अपनी स्त्री की आज्ञा का उसी तरह पालन करता। प्रति दिन चूल्हे की राख साफ़ करते करते उसकी उँगलियाँ सफ़ेद पड़ गई थीं, अतएव लोगों ने उसका नाम रक्खा 'श्वेतांगुलि'।

दूसरा स्त्री का दास अपनी स्त्री की आज्ञानुसार, लज्जा के कारण, रात्रि के पिछले प्रहर में तालाब से पानी भरकर लाया करता था। इससे आवाज़ सुनकर तालाब के किनारे के वृक्षों पर सोते हुए बगुले उड़ जाते थे, अतएव लोगों ने उसका नाम रक्खा 'बकोड्डायक'।

तीसरा स्त्री का दास प्रातःकाल उठकर अपनी स्त्री के सामने हाथ जोड़कर पूछता, "प्रिये, क्या करूँ?" वह कहती, "जाओ, तालाब से पानी भरकर लाओ। वह फिर कहती, "अब कोठार में से चावल निकालकर साफ़ करो।" भोजन के पश्चात् कहती, "अब मेरे पैर धोकर घी की मालिश करो।" वह हर काम के लिये अपनी स्त्री से पूछता, अतएव लोगों ने उसका नाम रक्खा 'किंकर'।

चौथा स्त्री का दास अपनी स्त्री से पूछता, "प्राणेश्वरी, मैं स्नान करना चाहता हूँ।" स्त्री कहती, "जाओ, आँवलों को सिल पर पीसकर, अँगोछा पहनकर, शरीर में तेल की मालिश करके घड़ा लेकर, तालाब में स्नान करने जाओ, और उधर से लौटते समय पानी का घड़ा भरकर लेते आना।" पुरुष कहता, "जो आज्ञा।" इस पर लोगों ने उसका नाम रक्खा 'स्नायक'।

पाँचवाँ स्त्री का दास रसोई में आसन पर बैठा-बैठा अपनी स्त्री से भोजन माँगता। वह कहती, "थाली लेकर मेरे पास

आओ।" उसकी आज्ञानुसार वह उसके पास आता। भोजन परोसकर वह कहती, "जाओ, अब अपनी जगह बैठकर खाओ।" पुरुष हाथ में थाली लेकर गीध की चाल चलता हुआ अपने आसन पर जाकर बैठता, अतएव उसका नाम पड़ा, "गृध्र इव रिंखी'। छठा स्त्री का दास अपनी स्त्री की आज्ञानुसार अपने बच्चे के मलमूत्र के कपड़े धोता था अतएव उसका नाम पड़ा 'हदज्ञ'।

गुणचन्द्र की कथा सुनकर सब लोग बहुत हँसे और कहने लगे, "महाराज, विष्णुमित्र में इन छहों दासों के गुण विद्यमान हैं, अतएव इससे आपको कुछ न मिलेगा।" विष्णुमित्र बोला, "महाराज, ये लोग हँसी कर रहे हैं, जो आप माँगेंगे, मैं दूंगा।" गुणचन्द्र ने कहा, "अच्छा, अपने घर से गुड़ और घी मिश्रित सीवइयाँ दिलवाओ।" विष्णुमित्र ने कहा, "यह कोई बड़ी बात नहीं, चलिये।" रास्ते में गुणचन्द्र ने बता दिया कि वह पहले भी घर जा चुका है, पर उसे खाली हाथ लौटना पड़ा। विष्णुमित्र ने कहा, "कोई बात नहीं, आप द्वार पर खड़े रहें, मैं यहीं लाकर दे दूंगा।" अपने घर जाकर विष्णुमित्र ने अपनी स्त्री से पूछा कि सीवइयाँ तैयार हैं? उसकी स्त्री गुड़ लेने के लिये सीढ़ी लगाकर माले पर चढ़ी, इतने में झट विष्णुमित्र ने सीवइयों की पतेली उठाकर गुणचन्द्र के भिक्षापात्र में उलट दी। सुलोचना ने अपने पति को साधु को सीवइयाँ देते हुए देख लिया। वह ऊपर से चिल्लाने लगी, "इसे मत दो, इसे मत दो।" गुणचन्द्र अपनी नाक पर उँगली रखकर सुलोचना की ओर इशारा करता हुआ वहाँ से शीघ्रता से चल दिया।

३३—कृतघ्न मत बनो

एक बार की बात है, किसी नगर में बहुत जोर का अकाल पड़ा। सब कौए एकत्रित होकर सोचने लगे, "क्या करना चाहिये ? सर्वत्र भुखमरी फैल रही है; लोगों ने हमें काकपिंड देना बन्द कर दिया, और हमें जूंठन तक नसीब नहीं होती।" बूढ़े कौओं ने प्रस्ताव किया, "सब को मिलकर समुद्र-तट पर चलना चाहिये, वहाँ हमारे भानजे जलकाक रहते हैं। वे हमें समुद्र में से मछलियाँ पकड़-पकड़ कर देंगे।" यह बात सब को पसंद आई और सब कौए मिलकर समुद्र-तट पर पहुँचे। जलकाक अपने मामाओं को देखकर बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने उनका आदर-सत्कार किया। कौए समुद्र-तट पर आराम से रहने लगे।

कुछ समय बाद जब अकाल नष्ट हो गया, और खाने-पीने का कोई कष्ट न रहा तो कौओं ने अपने साथियों को अपने निवास-स्थान भेजकर पता लगाया। उन्होंने आकर समाचार दिया कि नगर में अमन-चैन है, और अब काकपिंड मिलने लगा है। कौओं ने घर लौटने का निश्चय कर लिया, परन्तु प्रश्न यह था कि क्या कहकर जायें। एक दिन कौओं ने जलकौओं को बुलाकर कहा, "भानजो, हम लोग आज जा रहे हैं।" उन्होंने पूछा, "मामा जी, अभी क्यों जाते हैं, अभी और रहिये।" कौओं ने उत्तर दिया, "सुबह उठते ही सबसे पहले हमें तुम्हारे अधोभाग के दर्शन होते हैं, अतएव हम यहाँ अधिक नहीं रह सकते।"

३४–जैसे को तैसा

कोई किसान अपनी गाड़ी में धान्य भरकर किसी शहर में जा रहा था। गाड़ी में तीतरी का एक पिंजड़ा भी बँधा हुआ था। शहर में पहुँचने पर गंधी के पुत्रों ने किसान से पूछा, "यह गाड़ी-तीतरी (गाड़ी में लटके हुए पींजड़े में बन्द तीतरी, अथवा गाड़ी और तीतरी) कैसे बेचते हो ?" उसने कहा, "एक कार्षापण (एक सिक्का) में।" गंधी के पुत्रों ने उसे एक कार्षापण दे दिया, और उसको गाड़ी और तीतरी दोनों लेकर चलते बने।

किसान को बड़ा दुख हुआ कि एक कार्षापण में उसकी धान्य से भरी गाड़ी भी गई और तीतरी भी। उसने राजा के यहाँ मुक़दमा किया, मगर वह हार गया। बिचारा किसान अपने बैल लेकर रोता हुआ जा रहा था कि उसे एक कुलपुत्र मिला। उसने रोने का कारण पूछा तो किसान ने सब कह बताया।

कुलपुत्र को किसान के ऊपर बड़ी दया आई। उसने कहा, "तुम चिन्ता न करो। तुम एक काम करो कि तुम गंधी के पुत्रों के पास जाकर कहो कि धान्य से भरी हुई मेरी गाड़ी तो अब चली ही गई, अब ये बैल भी तुम्हीं ले लो; इनके बदले मुझे केवल दो पायली (आठ सेर) सत्तु दे दो। परन्तु यह सत्तु तुम हर किसी के हाथ से न लेना। तुम कहना कि यदि तुम्हारी प्राणेश्वरी सर्वालंकार विभूषित होकर सत्तु देने आये तो ही मैं लूंगा।" किसान ने वैसा ही किया। गंधीपुत्र सत्तु देने को तैयार हो गये। परन्तु गंधी की स्त्री ज्योंही सत्तु लेकर आई, किसान उसका हाथ पकड़कर उसे लेकर चलता बना। गंधीपुत्रों ने चिल्ला कर कहा, "यह क्या ?" किसान ने कहा, "कुछ नहीं, दो पायली सत्तु लिये जा रहा हूँ।" इस पर बहुत से लोग इकट्ठे हो गये। बड़ी मुश्किल से लोगों ने बीच-बिचाव किया। गंधी-पुत्रों ने किसान की गाड़ी वापिस दे दी और उसने उनकी स्त्री लौटा दी।

(२) ऐतिहासिक कहानियाँ

३५—श्रेणिक और चेलना का विवाह

हेहय कुल में उत्पन्न वैशाली का राजा चेटक गणराजाओं का मुखिया था। उसके सात कन्यायें थीं—प्रभावती, पद्मावती, मृगा, शिवा, ज्येष्ठा, सुज्येष्ठा तथा चेलना। इनमें प्रभावती का विवाह वीतिभय के राजा उद्रायण के साथ, मृगावती का कौशांबी के राजा उदयन के साथ, शिवा का उज्जयिनी के राजा प्रद्योत के साथ, तथा ज्येष्ठा का कुंडग्रामवासी महावीर के ज्येष्ठ भ्राता नंदिवर्धन के साथ हुआ था। सुज्येष्ठा और चेलना अभी कुंवारी थीं।

मगध के राजा श्रेणिक ने जब सुज्येष्ठा के रूप गुण की प्रशंसा सुनी तो वह उसपर मोहित हो गया। उसने विवाह का सन्देश लेकर राजा चेटक के पास दूत भेजा, परन्तु चेटक ने यह कहकर उसे लौटा दिया कि वह श्रेणिक के कुल में अपनी कन्या नहीं देना चाहता। श्रेणिक को बहुत बुरा लगा। उसने अपने मंत्री अभयकुमार को बुलाकर पूछा कि क्या करना चाहिये। मंत्री ने कहा, "महाराज, आप चिन्ता न करें; सुज्येष्ठा को मैं यहीं ला दूंगा।" अभयकुमार ने वणिक् का वेष बनाया, और अपना स्वर तथा रूपरंग बदलकर वैशाली पहुँचा, और वहाँ राजा के कन्या-अंत:पुर के पास एक दुकान किराये पर लेकर रहने लगा। अभयकुमार ने चित्रपट पर श्रेणिक का एक सुन्दर चित्र बनाकर दुकान में टाँग दिया। अभय की दुकान पर अन्त:पुर की जो दासियाँ तेल, चूर्ण आदि खरीदने आतीं, उन्हें वह खूब माल देता, और उनका दान-मान आदि से सत्कार करता। श्रेणिक के चित्र को देखकर एक दिन दासियों ने पूछा, "यह किसका चित्र है?" अभय ने कहा, "ये राजा श्रेणिक हैं।" दासियों ने पूछा, "क्या ये इतने सुन्दर हैं?" अभय ने कहा, "ये इससे भी अधिक सुन्दर हैं; सच पूछा जाय तो उनका अलौ-

किक रूप चित्रित ही नहीं किया जा सकता ।" दासियों ने अन्तःपुर में जाकर श्रेणिक के सौंदर्य की चर्चा की। अन्तःपुर की कन्याओं ने उसके चित्र को देखने की इच्छा प्रकट की, और दासियों से चित्र लाने को कहा। दासियों ने अभयकुमार से चित्र माँगा। पहले तो उसने मना कर दिया कि तुम्हारे अन्तःपुर में अपने राजा के चित्र को भेजकर मैं उन्हें कष्ट में नहीं डालना चाहता; परन्तु बहुत कहने-सुनने पर अभयकुमार ने दासियों को चित्र दे दिया, और वे उसे अन्तःपुर में ले गईं। सुज्येष्ठा श्रेणिक के चित्र को देखकर उस पर मुग्ध हो गई, और दासियों से बोली कि कोई ऐसा उपाय करो जिससे मुझे श्रेणिक मिल सके। दासियों ने आकर अभयकुमार से कहा। अभय ने कहा कि यदि ऐसी बात है तो मैं श्रेणिक को यहीं ला सकता हूँ। श्रेणिक वैशाली में आ गया। अभयकुमार ने अन्दर ही अन्दर, कन्या-अन्तःपुर तक एक सुरंग खुदवाई, और नियत समय पर श्रेणिक अपना रथ लेकर सुज्येष्ठा को लेने पहुँच गया।

सुज्येष्ठा अपनी छोटी बहन चेलना से बहुत प्रेम करती थी। उसने चेलना को बुला कर कहा, "बहन, मैं श्रेणिक के साथ जा रही हूँ।" परन्तु अपनी बहन का जाना सुनकर चेलना भी उसके साथ चलने को तैयार हो गई। सुज्येष्ठा ने चेलना से कहा, "बहन, ज़रा ठहर, मैं अपने गहने लेकर अभी आती हूँ।" परन्तु श्रेणिक को डर था कि कहीं किसी को पता न लग जाय, इसलिये वह जल्दी-जल्दी में चेलना को लेकर ही चलता बना। कुछ देर बाद सुज्येष्ठा आई तो रथ को न देखकर सिर पटक कर रोने लगी।

जब चेटक को पता चला तो उसके सिपाहियों ने श्रेणिक का पीछा किया। चेटक के सिपाहियों ने श्रेणिक के सिपाहियों को मार दिया, परन्तु श्रेणिक सुरंग में से अपना रथ भगाकर ले गया। राजगृह पहुँच कर श्रेणिक ने सुज्येष्ठा को आवाज़ दी "सुज्येष्ठा"। अन्दर से उत्तर मिला, "मैं चेलना हूँ, सुज्येष्ठा वहीं रह गई।"

३६—महावीर की प्रथम शिष्या—चन्दनबाला

कौशांबी नगरी में राजा शतानीक अपनी रानी मृगावती के साथ राज्य करता था। सत्यवादी नाम का उसका धर्मगुरू था। सुगुप्त शतानीक का मंत्री था, तथा उसकी स्त्री नन्दा और मृगावती श्रमणोपासिका होने से दोनों परस्पर सखी थीं।

एक बार की बात है, श्रमण महावीर कौशांबी में विहार कर रहे थे। उन्होंने मन ही मन नियम लिया कि यदि कोई दासत्व को प्राप्त शृंखलाबद्ध मुंडितशिर राजकुमारी आहार देगी तो वे ग्रहण करेंगे, अन्यथा नहीं। महावीर को भ्रमण करते-करते चार मास बीत गये परन्तु उन्हें आहार लाभ न हुआ। वे नंदा के घर आये। नंदा बड़े आदर के साथ आहार लेकर उपस्थित हुई, परन्तु महावीर का अभिग्रह पूर्ण न होने से वे वापिस लौट गये। नंदा को बहुत दुख हुआ। उसने मंत्री से कहा, "इतने दिन हो गये, भगवान् को भिक्षा नहीं मिल रही है, अवश्य ही कोई कारण होना चाहिये। कोई ऐसा उपाय कीजिये जिससे उन्हें आहार मिले।" उस समय नंदा के घर मृगावती की प्रतिहारी आई हुई थी। उसने जो कुछ सुना अपनी रानी से कह सुनाया। रानी ने राजा से कहा कि ऐसे राज्य से क्या लाभ जो भगवान् को भिक्षा तक नहीं मिलती? राजा ने मंत्री को बुलाकर इस बात की चर्चा की। राजा ने अपने धर्मगुरू से सब भिक्षुओं के आचार-व्यवहार पूछ कर उनका अपनी प्रजा में प्रचार किया, परन्तु फिर भी महावीर को भिक्षा-लाभ न हुआ।

इधर शतानीक ने चंपा के राजा दधिवाहन पर चढ़ाई कर दी, और एक रात में चंपा पहुँच कर नगरी को चारों ओर से घेर लिया। दधिवाहन भाग गया। शतानीक ने घोषणा कर दी कि जो जिसके हाथ लगे ले ले।

एक सारवान (ऊँट-सवार) ने दधिवाहन की रानी धारिणी और उसकी कन्या वसुमती को पकड़ लिया। उसने सोचा कि धारिणी को मैं अपनी स्त्री बना लूँगा और वसुमती को बेच दूँगा। धारिणी सारवान के मनोगत भावों को ताड़ गई, और उसने आत्महत्या कर ली। सारवान वसुमती को लेकर कौशांबी के बाजार में आया, और वहाँ नगर के धनावह नामक एक प्रमुख सेठ से मुँहमाँगा धन लेकर वसुमती को उसके हाथ बेच दिया। धनावह ने उसे लाकर अपनी स्त्री मूला को सौंप दिया, और कहा कि देखो इसे अपनी पुत्री की तरह पालना। वसुमती ने अपने शील-स्वभाव से शीघ्र ही घर के सब लोगों को वश में कर लिया, अतएव सब उसे शीलचन्दना अथवा चन्दना के नाम से पुकारने लगे।

मूला चन्दना से ईर्ष्या करने लगी। उसे सन्देह हुआ कि कहीं उसका पति उसे अपनी गृहस्वामिनी न बना ले। एक दिन धनावह सेठ मध्याह्न के समय घर आया। चन्दना ने देखा कि सेठ जी के पैर धुलाने के लिये घर में कोई नहीं है, अतएव वह स्वयं पानी लेकर उनके पैर धोने चली। संयोगवश उस समय चन्दना के केश खुले हुए थे। वे कीचड़ में गिरकर कहीं खराब न हो जायँ, अतएव धनावह ने उन्हें अपनी लाठी से उठाकर हाथ से बाँध दिया। सेठानी खिड़की में बैठी-बैठी यह सब देख रही थी। उसने सोचा, "यदि इसके साथ मेरे पति का प्रेम हो गया तो मुझे कोई न पूछेगा। अतएव व्याधि के बढ़ने से पहले ही उसका इलाज करना चाहिये।"

सेठ के चले जाने पर मूला ने एक नाई को बुलाकर चन्दना का सिर उस्तरे से मुँडवा दिया और उसे शृंखला में बाँधकर खूब पीटा। तत्पश्चात् उसे घर के अन्दर बन्द करके बाहर से संकल लगा दी। कुछ समय पश्चात् जब सेठ जी आये तो उन्होंने पूछा, "चंदना कहाँ है ?" परन्तु सेठानी के डर के मारे कोई कुछ न ोला। सेठ जी ने समझा कि वह कहीं इधर-उधर खेलती होगी। रात को उन्होंने फिर पूछा, परन्तु फिर भी किसी ने

कोई उत्तर न दिया। उन्होंने समझा, वह सो गई होगी। दूसरे दिन भी चन्दना का कोई पता न चला। तीसरे दिन सेठ जी ने फिर पूछा, और नौकरों से कहा कि यदि कोई न बतायेगा तो अच्छा न होगा। इस पर एक वृद्धा दासी ने सोचा कि यदि चन्दना ही न रही तो जीने से क्या लाभ ? उसने सेठ से कहा, सेठ जी, चन्दना सामने के घर में बन्द है। सेठ ने द्वार खोला तो भूख-प्यास से पीड़ित, म्लान-मुख चन्दना को देखा। वह समझ गया कि यह सब मूला की करतूत है। उसने चन्दना को खाने के लिये कुलथी दी, और स्वयं शृंखला काटने के लिये लुहार को बुलाने चल दिया।

चन्दना अपनी अवस्था पर रह रह कर विचार कर रही थी कि इतने में वहाँ भगवान महावीर भिक्षा के लिये आ निकले। चन्दना ने सोचा, क्यों न मैं इस कुलथी को भगवान को देकर पुण्योपार्जन करूँ। भगवान् ने भिक्षा के लिये हाथ फैलाया, और चन्दना ने भगवान् का अभिग्रह पूर्ण कर अक्षय पुण्य का उपार्जन किया। भगवान् के पारणा का समाचार नगर भर में बिजली की तरह फैल गया। राजा भी अन्तःपुर सहित वहाँ आया। दधिवाहन के कंचुकी ने वसुमती को पहचान लिया, और उसने राजा से कहा, महाराज, यह दधिवाहन की पुत्री राजकुमारी वसुमती है। रानी मृगावती को जब यह मालूम हुआ कि वह उसकी बहन की पुत्री है तो उसे बड़ी प्रसन्नता हुई, और उसने चन्दना को गले से लगा लिया।

चन्दना का नाम दूर-दूर तक फैल गया। कुछ समय बाद चन्दना ने महावीर के धर्म में दीक्षा ले ली, और भगवान् की प्रथम शिष्या बनकर श्रमणीसंघ का नेतृत्व स्वीकार किया।

३७–कुशल मंत्री अभयकुमार

एक बार की बात है, उज्जयिनी के राजा प्रद्योत ने मगधाधिपति श्रेणिक पर चढ़ाई कर दी। प्रद्योत की सेना बलशाली थी, अतएव श्रेणिक को बहुत चिन्ता हुई। उसने अपने मंत्री अभयकुमार को बुलाकर पूछा कि क्या करना चाहिये। अभयकुमार ने कहा, "राजन्, चिन्ता की कोई बात नहीं, मैंने पहले से ही सब व्यवस्था कर रक्खी है।" मंत्री ने एक युक्ति की थी कि जहाँ प्रद्योत की सेना पड़ाव डालनेवाली थी, उस स्थान पर लोहे के सन्दूक़ों में दीनारें भरकर उन्हें ज़मीन के अन्दर गाड़ दिया था। कई दिन तक दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध होता रहा। एक दिन अभयकुमार ने प्रद्योत को एक गुप्त पत्र लिखकर भेजा, "राजा श्रेणिक ने तुम्हारे सैनिकों को फोड़ लिया है, अतएव तुम यहाँ से शीघ्र ही चले जाओ। यदि तुम्हें इस बात का विश्वास न हो तो तुम सैनिकों के पड़ाव स्थानों को खोदकर देखो, तुम्हें दीनारों से भरे सन्दूक़ गड़े मिलेंगे।" प्रद्योत ने देखा तो बात सच निकली। प्रद्योत तुरंत वहाँ से भाग गया। उज्जयिनी पहुँच कर उसने अपने सैनिकों को बुलाया और उन पर शत्रु से रिश्वत लेकर बग़ावत करने का अभियोग लगाया। सैनिकों ने उत्तर दिया, "महाराज, हम लोग सर्वथा निर्दोष हैं; यह अभयकुमार की कोई कूटनीति मालूम होती है।"

प्रद्योत ने सोचा कि यदि अभयकुमार राजनीति में इतना कुशल है, तो उसे पकड़ कर मँगाना चाहिये। एक दिन प्रद्योत ने सभा में कहा, "ऐसा कौन व्यक्ति है जो अभयकुमार को यहाँ ला सके।" यह सुनकर एक गणिका खड़ी होकर बोली, "महाराज, आज्ञा हो तो मैं इस कार्य को करूँ, परन्तु मुझे कुछ साथी मिलने चाहिये।" गणिका सात आदमियों को

साथ लेकर नाना प्रकार की भोजन आदि सामग्री के साथ राजगृह को रवाना हो गई। पहले सब लोग एक साध्वी के पास पहुँचे और उससे उन्होंने कपट रूप से श्रावक-श्राविका के व्रत ले लिये। तत्पश्चात् उन्होंने अन्य अनेक स्थानों में भ्रमण किया, विशेषकर ऐसे स्थानों में जहाँ साधु और श्रावक रहते थे। तत्पश्चात् अनेक शास्त्रों का अभ्यास करने के बाद वे लोग राजगृह पहुँचे। गणिका और उसके साथी नगर के बाहर एक उद्यान में ठहरे, और वहाँ से नगर के चैत्य-चैत्यालयों (मंदिर) की वंदना करते हुए अभयकुमार के घर आये। अभयकुमार ने आभूषण रहित सुन्दर रूपवाली श्राविका को देख, उठकर उसका स्वागत किया, तथा सब को चैत्यों की वन्दना कराई। अभयकुमार को अभिवादन कर सब लोग बैठ गये। अभय ने पूछा, "आप लोगों का कहाँ से पधारना हुआ?" उन्होंने कहा, "उज्जयिनी से। उज्जयिनी में एक वणिक्-पुत्र रहता था। उसका देहान्त हो गया; उसकी यह भार्या है। हम लोग दीक्षा लेना चाहते हैं लेकिन दीक्षित होकर हम चैत्यालयों की वन्दना न कर सकेंगे।" अभयकुमार ने अपने सार्धामियों के प्रति वात्सल्य बताते हुए कहा, "तो आज आप लोग मेरा आतिथ्य स्वीकार करें।" उन्होंने उत्तर दिया, "क्षमा कीजिये, हम भोजन नहीं करेंगे।" तत्पश्चात् कुछ देर बैठकर वे लोग चले गये। दूसरे दिन प्रात:काल अभयकुमार घोड़े पर सवार होकर उद्यान में पहुँचा, और उन्हें भोजन के लिये निमंत्रित किया। उन लोगों ने उत्तर दिया, "आप कष्ट न करें, अब तो हमने भोजन कर लिया है; आज आप ही क्यों न हमारा आतिथ्य स्वीकार करें?" अभयकुमार ने सोचा, "संभवत: ये लोग मेरे घर नहीं जाना चाहते, अतएव उसने उनका निमंत्रण स्वीकार कर लिया। भोजन के साथ गणिका ने खूब मदिरा पान कराकर अभय को सुला दिया, और उसे घोड़ों के रथ में बैठाकर उज्जयिनी ले गये। अभयकुमार को देखकर प्रद्योत बड़ा प्रसन्न हुआ। अभयकुमार ने कहा, "राजन्, इसमें

तुम्हारी कौन सी कुशलता है ? धर्म-छल से ठगकर तुम मुझे यहाँ लाये हो।"

अभयकुमार उज्जयिनी में रहने लगा। एक बार प्रद्योत का हाथी नलगिरि बिगड़ गया। अभय को बुलाया गया। उसने कहा कि कौशांबी का राजा उदयन गानविद्या में निपुण है; यदि उसे यहाँ किसी तरह लाया जा सके तो नलगिरि वश में आ सकता है। उदयन को पकड़ने के लिये प्रद्योत ने यंत्रमय हाथी बनवाकर जंगल में छुड़वा दिया। वनचरों ने जाकर उदयन को सूचना दी कि जंगल में एक हाथी आया है। उदयन वहाँ आया और हाथी को देखकर गाने लगा। यंत्रमय हाथी के अन्दर प्रद्योत के सैनिक छिपे हुए थे। ज्योंही उन्होंने उदयन को हाथी के पास आते हुए देखा, वे झट अन्दर से कूदकर बाहर निकल आये और उदयन को गिरफ़्तार कर लिया। उदयन राजदरबार में उपस्थित किया गया। प्रद्योत ने कहा, "देखो, तुम राजकुमारी वासवदत्ता को संगीत सिखाओ; परन्तु ध्यान रखना कि वह एक आँख से कानी है, अतएव तुम उसे देखना नहीं, अन्यथा वह तुम्हें देखकर लज्जित होगी।" इसी तरह प्रद्योत ने राजकुमारी से कह दिया, "देखो, तुम्हारा गुरू कोढ़ी है, अतएव तुम उसे मत देखना।" गुरू और शिष्या के बीच में एक परदा (यवनिका) लगा दिया गया और राजकुमारी परदे के अन्दर गायन सीखने लगी। वासवदत्ता को उदयन का स्वर बड़ा मधुर लगता था, परन्तु उसे कोढ़ी समझ कर वह उसकी ओर न देखती थी। एक दिन वासवदत्ता को अपने गुरू को देखने की तीव्र इच्छा हुई। उसने जान-बूझ कर गाने को अशुद्ध पढ़ दिया। इस पर उदयन को बहुत बुरा लगा। उसने रुष्ट होकर कहा, "अरी एकनेत्रे, तू अशुद्ध बोलती है ?" राजकुमारी बोली, "अरे कोढ़ी, क्या तू अपने आपको नहीं जानता ?" उदयन ने सोचा, बस जैसा मैं कोढ़ी हूँ, वैसी ही यह कानी है। उसने एकदम से परदा उठाकर फाड़ दिया। दोनों का परस्पर संयोग हुआ, और उस दिन से दोनों में प्रीति बढ़ने लगी।

एक दिन नलगिरि फिर बिगड़ उठा। अभयकुमार ने कहा कि उदयन गाना गाये तो वह शान्त हो सकता है। उदयन ने कहा, "राजकुमारी और मैं भद्रवती हथिनी पर चढ़कर गायेंगे।" दोनों के बीच में परदा लगा दिया गया, और दोनों गाना गाने लगे। हाथी शान्त हो गया, परन्तु वासवदत्ता और उदयन भाग निकले। प्रद्योत के कर्मचारियों ने नलगिरि पर बैठकर दोनों का पीछा किया। परन्तु ज्योंही हाथी हथिनी के पास पहुँचता, उदयन उसके ऊपर एक मूत्र का घड़ा उठाकर फेंक देता। उदयन वासवदत्ता को लेकर कौशांबी पहुँच गया, और दोनों आनन्दपूर्वक रहने लगे।

(२)

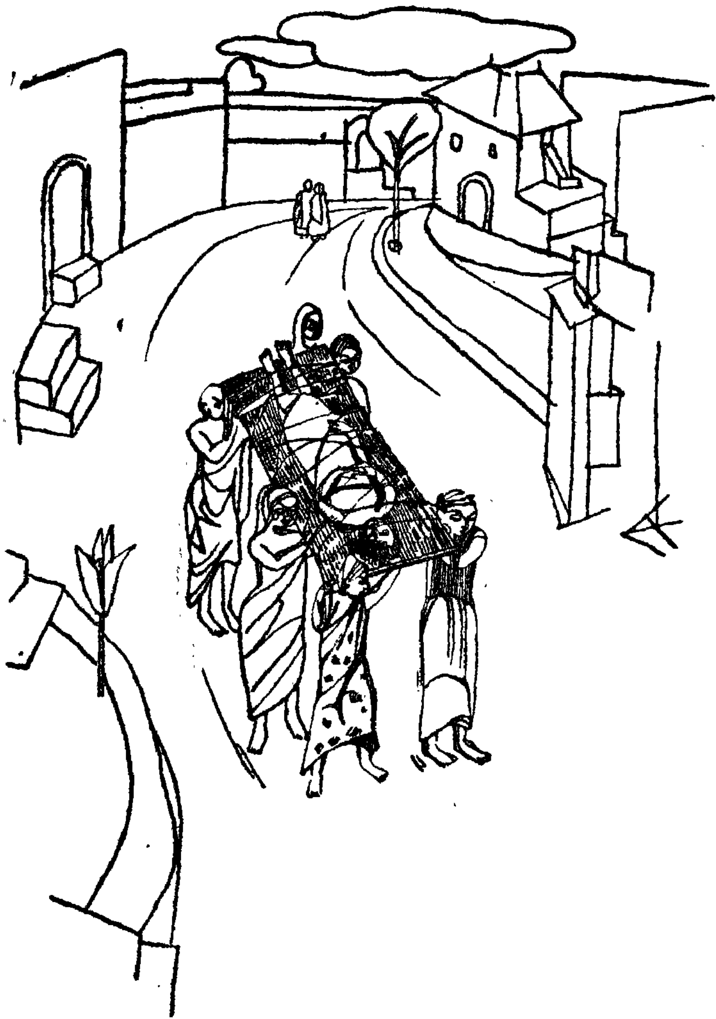
अभयकुमार को प्रद्योत के दरबार में रहते-रहते बहुत समय हो गया। एक दिन उसने राजा से कहा, "राजन्, अब मुझे घर जाने की आज्ञा दीजिये। यदि आप मुझे न जाने देंगे तो मैं अग्नि में जलकर मर जाऊँगा।" प्रद्योत ने अभय का बहुत आदर-सत्कार किया और उसे घर लौटने की अनुमति दे दी। जाते समय अभय ने प्रतिज्ञा की, "तुम मुझे यहाँ धर्मछल से लाये थे, अब मैं भी यदि तुम्हें दिन में सब के सामने रोते-चिल्लाते हुए यहाँ से उठाकर न ले जाऊँ तो मेरा नाम अभय नहीं।"

कुछ समय पश्चात् अभयकुमार किसी गणिका की दो अत्यन्त रूपवती कन्याओं को साथ लेकर वणिक् के वेष में उज्जयिनी में आया, और राजमार्ग पर मकान लेकर रहने लगा। एक दिन प्रद्योत ने उन युवतियों को देखा और वह उन पर आसक्त हो गया। युवतियों ने भी राजा की ओर विलासपूर्ण दृष्टि से कटाक्षपात किया, और हाथ जोड़कर नमस्कार किया। प्रद्योत ने अपने भवन में आकर उनके पास एक दूती भेजी, परन्तु इन युवतियों ने उसे डाँट-फटकार कर निकाल दिया। प्रद्योत ने फिर दूती को भेजा। अबकी बार युवतियों ने पहले की अपेक्षा कुछ कम रोष प्रकट

किया। तीसरे दिन फिर दूती आई। अबकी बार युवतियों ने कहा कि आज से सातवें दिन मंदिर में देवयज्ञ होनेवाला है, हम उस दिन मिलेंगी। इधर अभयकुमार ने राजा प्रद्योत के समान रूप-रंगवाले एक पुरुष को पकड़कर उसका नाम प्रद्योत रख दिया, और उसे पागल बना दिया। अभयकुमार लोगों से कहता, "देखो, यह मेरा भाई है। क्या करूँ ? भ्रातृस्नेह के कारण मुझे इसकी देखभाल करनी पड़ती है। मुझे हमेशा डर रहता है कि यह कहीं भाग न जाय।" अभय का बनावटी भाई पागल-पन के कारण गुस्सा होकर बार-बार उठकर भाग जाता और जब उसे पकड़कर लाते तो वह ज़ोर-ज़ोर से रोता-चिल्लाता हुआ लोगों से कहता, "देखो, भाइयो, मैं प्रद्योत हूँ, और मुझे ये लोग जबर्दस्ती उठाकर लिये जा रहे हैं।"

घर सातवें दिन प्रद्योत ने फिर दूती भेजी। गणिका की कन्याओं ने कहला भेजा कि प्रद्योत अकेला आये। प्रद्योत जब नियत समय पर आया तो उसे पकड़कर पलंग से बाँध दिया, और दिन के समय नगर के बीच में से होकर अभय के कर्मचारी उसे लेकर चल दिये। प्रद्योत बहुत रोया-चिल्लाया कि "देखो, मेरा नाम प्रद्योत है, और ये लोग मुझे जबर्दस्ती उठाये लिये जा रहे हैं", परन्तु लोगों पर इसका कोई असर न हुआ। उन्होंने समझा कि यह वणिक्-पुत्र का वही पागल भाई प्रद्योत है, और लोग उसे ले जा रहे हैं। कुछ लोगों ने पूछा, "भाई, इसे कहाँ ले जा रहे हो ?" उत्तर मिला, "वैद्य के घर चिकित्सा कराने।" तत्पश्चात् वे लोग प्रद्योत को घोड़ों के रथ में डालकर राजगृह ले गये।

श्रेणिक प्रद्योत से पहले से ही खार खाये बैठा था। वह एकदम उठकर आया और तलवार लेकर उसे मारना ही चाहता था कि अभयकुमार ने उसे रोक दिया कि यह राजधर्म नहीं है। श्रेणिक और प्रद्योत की परस्पर प्रीति हो गई, और श्रेणिक ने उसे सम्मान-पूर्वक उज्जयिनी बिदा किया।



३८—व्यवसायी कृतपुण्य

राजगृह नगर में धनावह नाम का एक व्यापारी रहता था। उसका पुत्र था कृतपुण्य। कृतपुण्य जब बड़ा हुआ तो उसने समस्त कलाओं का अध्ययन किया और तत्पश्चात् उसका विवाह हो गया। माता-पिता और मित्रों की सम्मति से जीवन का अनुभव प्राप्त करने के लिये कृतपुण्य को एक वेश्या के घर रक्खा गया। धीरे-धीरे वहाँ कृतपुण्य को बारह वर्ष बीत गये, और इस बीच में वह कंगाल हो गया। उसके माता-पिता ने बहुत चाहा कि किसी तरह उनका पुत्र घर लौट आये, परन्तु कृतपुण्य न माना।

कुछ समय पश्चात् उसके माता-पिता का देहान्त हो गया। कृतपुण्य की भार्या के पास अब कुछ आभूषण तथा रुपये बाक़ी बचे थे; उन्हें भी उसने अपने पतिदेव की अंतिम भेंट चढ़ा दी। वेश्या की माता समझ गई कि अब कृतपुण्य के पास कुछ नहीं बचा है। उसने उसकी भार्या-द्वारा प्रेषित द्रव्य में कुछ और मिलाकर उसे लौटा दिया, और वह कृतपुण्य को निकालने का उपाय सोचने लगी। परन्तु वेश्या नहीं चाहती थी कि कृतपुण्य वहाँ से जाय। एक दिन वेश्या की माता ने कुछ बहाना बनाकर कृतपुण्य को घर से निकाल दिया। कृतपुण्य अपने घर पहुँचा और अपने घर की हालत देखकर बहुत दुखी हुआ।

कुछ समय पश्चात् कृतपुण्य धन कमाने के लिये एक क़ाफ़ले के साथ परदेश को रवाना हुआ। चलते-चलते रास्ते में एक मंदिर पड़ा, और कृतपुण्य वहाँ खाट बिछाकर सो गया। संयोगवश उसी समय एक वणिक्-पुत्र की माँ को समाचार मिला कि जहाज़ फट जाने के कारण उसका इकलौता पुत्र मर गया है। इस समाचार से उसको बहुत दुख हुआ।

उसने सोचा कि अब मैं पुत्रविहीन हो गई हूँ, अतएव कहीं ऐसा न हो कि मेरी सब संपत्ति राजकोष में चली जाय, अतः वह किसी अनाथ पुरुष की खोज में चली। उसने कृतपुण्य को मंदिर में सोते हुए देखा और उसे उठाकर अपने घर ले आई। घर आकर वह ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी और बोली कि मेरा पुत्र बहुत दिनों बाद मिला है। उसने अपनी चारों पतोहुओं से भी कह दिया कि यह तुम्हारा देवर है।

कृतपुण्य आनन्द से रहने लगा। वहाँ उसे रहते-रहते बारह वर्ष बीत गये। इस बीच में उसके प्रत्येक वधू से चार-चार पाँच-पाँच संतानें हुईं। वणिक्-पुत्र की माँ अब कृतपुण्य को वहाँ से भगाने का उपाय सोचने लगी। एक दिन उसने सब तैयारियाँ कर लीं। बहुओं ने रास्ते के लिये लड्डू बनाये जिनके अन्दर उन्होंने बहुमूल्य रत्न भर दिये। तत्पश्चात् कृतपुण्य को मद्यपान कराकर बेहोश हालत में उसी मंदिर में ले जाकर छोड़ दिया। प्रातःकाल ठंडी-ठंडी हवा से कृतपुण्य की आँखें खुलीं, और उसने अपने आपको एक मंदिर में पड़ा पाया।

इस बीच में व्यापारियों का क़ाफ़ला राजगृह वापिस पहुँच गया। कृतपुण्य की स्त्री ने जब अपने पति को उसमें न पाया तो उसे बहुत चिंता हुई। उसने अपने पति की खोज में चारों ओर आदमी दौड़ाये। भाग्यवश कृतपुण्य मंदिर में मिल गया, और वह सकुशल अपने घर आ गया।

इस बीच में कृतपुण्य के एक पुत्र हो गया था, जो लगभग ग्यारह वर्ष का था। वह पाठशाला से पढ़कर आया और भूख के मारे रोने लगा। वह अपनी माँ से बोला, "माँ खाने को दे, नहीं तो मारूँगा।" माँ ने उसे अपने पति के लाये हुए लड्डुओं में से एक लड्डू दे दिया, और वह उसे खाता-खाता बाहर चला गया। थोड़ी दूर चलकर उसे लड्डू में से एक रत्न मिला, और उसने उसे पाठशाला के अपने साथियों को दिखलाया। उन्होंने उसे एक पूड़े बेचनेवाले को दे दिया और उससे

कहा कि हमें इसके बदले तू प्रति दिन पूड़े दिया कर। इसी तरह और लड्डुओं में से भी रत्न निकले और कृतपुण्य धनी बन गया।

एक बार राजा श्रेणिक का प्रिय हाथी सेचनक नदी में नहाने गया और वहाँ उसे मगर ने पकड़ लिया। राजा बहुत चिंतित हुआ। उसके मंत्री अभयकुमार ने कहा कि यदि कहीं जलकांत मिल सके तो हाथी बच सकता है। राजा ने नगर भर में घोषणा करा दी कि जो कोई जलकांत मणि लाकर देगा, उसे आधा राज्य और राजकन्या दी जायगी। पूड़े बेचनेवाले को जब इसका पता लगा तो वह अपनी मणि लेकर राज-दरबार में उपस्थित हुआ। जलकांत मणि नदी में ले जाकर रक्खी गई तो नदी में सब जगह प्रकाश ही प्रकाश फैल गया। मगर ने समझा कि वह जल में से निकलकर स्थल में आ गया है। उसने घबड़ा कर हाथी को छोड़ दिया।

राजा ने पूड़े बेचनेवाले को बुलाकर पूछा तो मालूम हुआ कि वह मणि उसे कृतपुण्य के लड़के से मिली थी। राजा ने कृतपुण्य को बुलाकर उसका बहुत सन्मान किया और उसे अपनी कन्या और आधा राज्य दे दिया।

कुछ समय बाद वेश्या और कृतपुण्य की चारों बहुएँ भी वहाँ आ गईं और सब आनन्द पूर्वक रहने लगे।

३९–रानी चेलना और उसका सतीत्व

राजगृह नगर में राजा श्रेणिक राज्य करता था। उसकी रानी का नाम था चेलना। दोनों श्रमण भगवान महावीर के उपासक थे। एक बार श्रेणिक और चेलना महावीर के दर्शनार्थ गये। वहाँ से लौटते हुए उन्हें सन्ध्या हो गई। माघ का महीना था। चेलना ने मार्ग में ध्यानमुद्रा में अवस्थित कठोर तप करते हुए एक श्रमण को देखा, और ऐसी भयंकर शीत में उसे तप करते देख चेलना ने आश्चर्यचकित हो श्रमण को बार-बार प्रणाम किया।

रानी महल में आकर सो गई। संयोगवश सोते-सोते रानी का हाथ पलंग के नीचे लटक गया और ठंड से अकड़ गया। जब रानी की नींद खुली तो उसके हाथ में असह्य वेदना थी। तुरंत एक अँगीठी मँगाई गई और रानी अपना हाथ सेंकने लगी। इस समय रानी को सहसा उस तपस्वी का स्मरण हो आया जो भयंकर शीत में जंगल में बैठा तपश्चर्या में लीन था। उसके मुँह से सहसा निकल पड़ा, "उफ़, उस बेचारे का क्या हाल होगा!" राजा श्रेणिक वहीं मौजूद था। उसे संदेह हो गया कि अवश्य कोई बात है, और रानी ने किसी पर पुरुष को संकेत स्थान पर पहुँचने का वचन दिया है, जो संभवत: अब पूरा न हो सकेगा।

प्रातःकाल राजा श्रेणिक बहुत उदास मालूम होते थे। उन्होंने अपने प्रिय मंत्री अभयकुमार को बुलवाया और उसे शीघ्र ही अन्तःपुर जला डालने की आज्ञा दी। तत्पश्चात् श्रेणिक महावीर के समवशरण (धर्मसभा) में पहुँचे और उनसे प्रश्न किया, "भगवन्, चेलना पतिव्रता है या नहीं?" महावीर ने उत्तर दिया, "हाँ, चेलना पतिव्रता है।" भगवान का यह उत्तर सुनकर श्रेणिक व्याकुल हो उठा। उसने सोचा

कि अभयकुमार ने कहीं अन्तःपुर भस्म न कर डाला हो ? वह शीघ्रता से उठा, और भगवान् की वन्दना कर वहाँ से चल दिया।

श्रेणिक ने मंत्री को बुलाकर पूछा, "अन्तःपुर तो अभी नहीं जलाया ?" मंत्री ने कहा, "महाराज, आपकी आज्ञानुसार अन्तःपुर जला दिया है।" श्रेणिक ने अपना सिर धुन लिया, और क्रोध में आकर मंत्री से कहा, "हत्यारे, तुम भी उसी अग्नि में क्यों न जल मरे ?" अभय ने उत्तर दिया, "महाराज, इस नश्वर अग्नि में जलने से क्या लाभ ? मैं अब सच्ची अग्नि-परीक्षा की तैयारी कर रहा हूँ जिससे जन्म-जन्मान्तर के पाप धुल जाते हैं।" अभय ने राजा से निवेदन किया, "महाराज, चिन्ता न करें। अन्तःपुर सुरक्षित है। राजाज्ञा शिरोधार्य करने के लिये केवल एक हस्तिशाला जला दी गई थी।"

चेलना के प्रति श्रेणिक के इस निन्द्य बरताव को देखकर अभयकुमार को संसार से वैराग्य हो गया, और उन्होंने इस नश्वर और क्षणभंगुर संसार का त्याग कर महावीर के चरणों में बैठकर दीक्षा ग्रहण की।

४०—रानी मृगावती का कौशल

साकेत (अयोध्या) के उत्तर-पूर्व में सुरप्रिय नामक यक्ष का एक मंदिर था। यह यक्ष अत्यन्त चमत्कारपूर्ण था, और यह प्रत्येक वर्ष चित्रित किया जाता था। लोग इस यक्ष का महान् उत्सव मनाते थे, और यक्ष उत्सव समाप्त होते ही चित्रकार को मार डालता था। इसका परिणाम यह हुआ कि नगरी के चित्रकार नगरी छोड़ छोड़कर भागने लगे। जब राजा को यह मालूम हुआ तो उसने सोचा कि इस तरह तो सब चित्रकार भाग जायेंगे, और फिर यक्ष को कौन चित्रित करेगा ? राजा ने सब चित्रकारों को एकत्रित किया और उन्हें दान-मान आदि देकर अपने वश में कर लिया। राजा ने सब के नाम पत्तों पर लिखकर एक घड़े में डाल दिये, और प्रत्येक वर्ष एक-एक नाम निकाला जाने लगा। जिसका नाम निकलता, उसे यक्ष को चित्रित करना पड़ता था।

एक बार कौशांबी के एक चित्रकार का लड़का घूमता-फिरता साकेत आया, और एक चित्रकार के घर रहने लगा। यह चित्रकार अपनी वृद्धा माँ का इकलौता पुत्र था। संयोगवश इस वर्ष इस चित्रकार की बारी आई। वृद्धा को जब यह मालूम हुआ तो वह बहुत दुखी हुई और रुदन करने लगी। कौशांबी के चित्रकार के लड़के ने उसे समझाया कि "माँ तुम क्यों रोती हो ? यक्ष को चित्रित करने मैं जाऊँगा।" नवयुवक चित्रकार ने छट्ठम उपवास (दो दिन का उपवास) किया, नये-नये वस्त्र पहने, नये कलशों के जल से स्नान किया, नई कूँचियाँ लीं, नये-नये रंग और नये रंग के पात्र लिये, और यक्ष को चित्रित करने चल दिया। यक्ष को भक्तिभाव से चित्रित करने के पश्चात्, चित्रकार यक्ष के पैरों में गिरकर कहने लगा, "हे यक्ष, यदि मैंने कुछ अनुचित किया हो तो कृपा कर क्षमा

करना।" यक्ष संतुष्ट होकर बोला, "पुत्र, वर माँग।" चित्रकार बोला, "तू अब लोगों को मारना छोड़ दे।" यक्ष ने कहा, "यह वर तो मैं दे ही चुका हूँ, क्योंकि मैंने तुझे नहीं मारा। कोई दूसरा वर माँग।" चित्रकार बोला, "देव, मुझे ऐसा वर दो जिससे मैं किसी दोपाये, चौपाये, और बिना पैर के साँप आदि प्राणियों का एक हिस्सा देखकर तदनुरूप पूर्ण चित्र बना सकूं।" यक्ष ने कहा, "एवमस्तु।"

चित्रकार कौशांबी लौट गया। वहाँ शतानीक राजा अपनी रानी मृगावती के साथ राज्य करता था। राजा एक चित्रसभा बनवा रहा था, जिसमें अनेक चित्रकार काम करते थे। यह चित्रकार भी इस चित्र-सभा में काम करने लगा। उसे अन्तःपुर का क्रीड़ा-प्रदेश बनाने को दिया गया। एक दिन यह चित्रकार वहाँ बैठा बैठा सुन्दर-चित्र बना रहा था कि उसे जाली के भीतर से रानी की एक उँगली दिखलाई दी, उसे देखकर उसने रानी की हूबहू तस्वीर खींच दी। राजा जब वहाँ आया और उसने अपनी रानी की तस्वीर देखी तो वह चित्रकार के ऊपर बहुत क्रुद्ध हुआ। राजा ने सोचा कि अवश्य ही यह चित्रकार मेरे अन्तःपुर तक पहुँच गया है। उसने चित्रकार के वध का हुकुम सुना दिया। जब अन्य चित्रकारों को इस बात का पता लगा तो वे राजा के पास पहुँचे, और उन्होंने राजा के सामने सब बातें कह सुनाईं। राजा ने चित्रकार के वध की आज्ञा रद्द कर दी और उसके दाहिने हाथ का अँगूठा कटवा कर उसे देश निकाला दे दिया। चित्रकार फिर यक्ष के पास पहुँचा। यक्ष ने वरदान दिया, "तू बाँयें हाथ से चित्र खींचना।"

चित्रकार ने रानी मृगावती का एक सुन्दर चित्र बनाया, और उसे उज्जयिनी के राजा प्रद्योत के पास ले गया। प्रद्योत मृगावती का चित्र देखकर उस पर मुग्ध हो गया, और उसने फ़ौरन कौशांबी दूत भेजा कि मृगावती को भेज दो, नहीं तो युद्ध के लिये तैयार हो जाओ। राजा शतानीक ने दूत को अपमानित करके लौटा दिया। प्रद्योत ने कौशांबी

पर चढ़ाई कर दी। संयोगवश इस अवसर पर शतानीक अतिसार से पीड़ित होकर मर गया। रानी ने सोचा कि प्रद्योत कहीं मेरे नाबालिग पुत्र को न मार दे, अतएव उसने प्रद्योत को बुलाकर कहा, "राजन्, उदयन अभी बालक है, कहीं ऐसा न हो कि सामंत राजा इस पर आकर चढ़ाई कर दें और कौशांबी पर अपना अधिकार जमा लें, अतएव आप नगर की मजबूत क़िलेबन्दी करा दें।" नगरी की क़िलेबन्दी हो जाने के बाद रानी ने कहा, "राजन्, अब आप इसे धान्य से भर दें।" प्रद्योत ने रानी की यह भी बात मान ली, परन्तु फिर भी रानी उसकी न हुई। उसने फिर कौशांबी को घेर लिया।

इस अवसर पर श्रमण भगवान् महावीर कौशांबी में विहार कर रहे थे। मृगावती ने सोचा, आत्म-रक्षा का इससे अच्छा अवसर कौन सा हो सकता है? उसने भरी सभा में प्रद्योत की आज्ञा लेकर, उसकी अंगारवती आदि रानियों के साथ भगवान् के चरणों में बैठकर दीक्षा ले ली।

४१—राजा उद्रायण और प्रद्योत का युद्ध

वीतीभय नगरी (भेरा, ज़िला शाहपुर) में राजा उद्रायण अपनी रानी प्रभावती के साथ राज्य करता था। राजभवन में गोशीर्ष चन्दन की बनी हुई महावीर की एक अत्यन्त सुन्दर प्रतिमा थी। राजा-रानी नाच-गाकर त्रिकाल प्रतिमा की पूजा करते और अपने को धन्य मानते थे।

इस प्रतिमा की ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी, और लोग दूर-दूर से उसके दर्शन के लिये आते थे। एक बार गंधर्व देश का कोई श्रावक प्रतिमा के दर्शनार्थ आया। राजा की दासी प्रतिमा की देखभाल करती थी। श्रावक दासी के भक्तिभाव से अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसने संतुष्ट होकर उसे मनोवांछित फल देनेवाली बहुत सी गोलियाँ दीं। एक दिन दासी ने सोचा कि इन गोलियों का कुछ उपयोग करना चाहिये। उसकी इच्छा हुई कि वह सोने के समान सुन्दर बन जाय। बस उसने एक गोली खा ली और उसका शरीर सोने जैसा हो गया। दासी अब सुवर्णगुटिका नाम से प्रसिद्ध हो गई।

एक दिन सुवर्णगुटिका ने सोचा, कि यदि सौन्दर्य का उपभोग न हुआ तो वह किस काम का? उसने उज्जयिनी के राजा प्रद्योत का ध्यान कर दूसरी गोली खा ली, और उसके पास एक दूत भेजा। दूत ने जाकर प्रद्योत से कहा कि सुवर्णगुटिका ने आपको बुलाया है। राजा प्रद्योत अपने नलगिरि हाथी पर चढ़कर तुरंत आया। दोनों एक दूसरे को पाकर बहुत प्रसन्न हुए। प्रद्योत सुवर्णगुटिका और महावीर की प्रतिमा को लेकर रातोंरात वापिस लौट गया।

प्रातःकाल राजा के सिपाहियों ने देखा कि सड़कों पर नलगिरि हाथी की लीद और मूत्र पड़े हैं, जिसकी गंध से नगर के हाथी उन्मत्त हो उठे

हैं। थोड़ी दूर चलने पर उन्हें नलगिरि के विशाल पदचिह्न दिखाई पड़े। इतने में मालूम हुआ कि राजा की दासी लापता है और चन्दन की प्रतिमा के स्थान पर कोई दूसरी प्रतिमा रक्खी हुई है। यह समाचार जब राजा उद्रायण के पास पहुँचा तो उसे बहुत क्रोध आया। उसने प्रद्योत के पास समाचार भेजा कि दासी की मुझे चिन्ता नहीं, तुम चन्दन की प्रतिमा लौटा दो। परन्तु प्रद्योत प्रतिमा देने को तैयार न हुआ।

उद्रायण ने अनेक सामंतों को साथ लेकर उज्जयिनी पर चढ़ाई कर दी। दोनों सेनाओं में घनघोर युद्ध होने लगा। कुछ समय बाद दोनों राजाओं को ख्याल आया कि "व्यर्थ ही प्रजा के ध्वंस करने से क्या लाभ? क्यों न हम दोनों ही परस्पर युद्ध करें?" उद्रायण अपने रथ पर बैठकर युद्ध करने लगा और प्रद्योत नलगिरि पर। बहुत देर तक दोनों में युद्ध होता रहा। अन्त में प्रद्योत का हाथी गिर पड़ा और प्रद्योत पकड़ लिया गया। उद्रायण के सैनिकों ने प्रद्योत के हथकड़ियाँ डाल दीं, और 'दासीपतिप्रद्योत' शब्दों से उसका मस्तक अंकित कर दिया।

उद्रायण प्रद्योत को क़ैद करके वीतिभय लौट चला। मार्ग में वर्षा ऋतु आरंभ हो गई। प्रद्योत राजा का बन्दी था, अतएव उद्रायण जो भोजन स्वयं करता था, वही प्रद्योत को भी दिया जाता था। पर्यूषण[1] के दिन रसोइये ने प्रद्योत से पूछा, "महाराज, आज क्या खायेंगे?" प्रद्योत ने समझा कि संभवतः उसका अन्तिम समय आ गया है। उसने रसोइये से कहा "आज क्यों पूछते हो?" उत्तर मिला, "आज पर्यूषण होने से राजा का उपवास है, इसलिये आज आपके लिये ही भोजन बनेगा।" प्रद्योत ने कहा, "तो आज मेरा भी उपवास है।"

---

[1] जैन लोगों का एक पवित्र पर्व जो भाद्रपद महीने में मनाया जाता है।

जब उद्रायण ने यह सुना तो वह प्रद्योत की धूर्तता पर बहुत हँसा। उसने सोचा, "ऐसा पर्यूषण मनाने से क्या लाभ जिसमें हृदय की शुद्धता नहीं ?" उद्रायण ने तुरंत प्रद्योत को मुक्त कर दिया, और उसका मस्तक सुवर्णपट्ट से विभूषित कर उसे सादर बिदा किया।

४२—श्रेणिक की मृत्यु—कूणिक और चेटक का महायुद्ध

राजा श्रेणिक अपनी रानी चेलना के साथ राजगृह में राज्य करता था। एक बार चेलना गर्भवती हुई और उसे अपने पति के उदर का मांस खाने का दोहद हुआ। नौ महीने पश्चात् चेलना ने पुत्र को जन्म दिया, परन्तु पुत्र के होने की उसे ज़रा भी खुशी नहीं हुई। उसने दासी को बुलाकर पुत्र को अशोकवाटिका में फेंक आने को कहा। राजा को जब यह मालूम हुआ तो उसने रानी को बहुत बुरा-भला कहा। अशोकवाटिका में फेंके जाने के कारण बालक का नाम अशोकचन्द्र रक्खा गया। इस बग़ीची में मुर्ग़े की पूंछ से उसकी उँगली में चोट लग गई थी, अतएव उसका दूसरा नाम कूणिक पड़ा।

कूणिक जब बड़ा हुआ तो उसे अपने पिता को मारकर स्वयं राज्य करने की इच्छा हुई। उसने काल आदि दस राजकुमारों को बुलाकर उनके साथ मंत्रणा की, और श्रेणिक को गिरफ़्तार कर बन्दीगृह में डाल दिया। बन्दीगृह में श्रेणिक के सुबह और शाम प्रतिदिन सौ कोड़े लगाये जाते थे; रानी से उसकी मुलाक़ात नहीं हो सकती थी, तथा खान-पान सब उसका बन्द कर दिया था। कुछ समय पश्चात् जब रानी को मुलाक़ात की आज्ञा मिली तो वह अपने बालों में कुलथी छिपाकर राजा के लिये ले जाने लगी। रानी अपने केश शराब में भिगो लेती और उन्हें बन्दीगृह में जाकर धोती। इससे श्रेणिक ज़िन्दा रहता।

एक बार जब कूणिक भोजन कर रहा था, उसके पुत्र उदायिकुमार ने उसकी थाली में मूत दिया। कूणिक को अपना पुत्र बहुत प्यारा था, अतएव वह उतने भोजन को अलग कर खाना खाता रहा। खाना खाते-

खाते कूणिक अपनी माँ से बोला, "माँ, क्या और किसी का पुत्र इतना प्यारा होगा ?" कूणिक की माँ ने उत्तर दिया, "दुरात्मन्, तुझे मालूम है, जब तू छोटा था, तेरी उँगली में कीड़े पड़ गये थे, और उसमें बहुत पीप बहती थी। उस समय तेरा पिता तेरे मोह के कारण उस उँगली को अपने मुँह में डालकर चूस लेता था, और इससे तेरी वेदना शान्त होती थी। परन्तु तू इतना कृतघ्न निकला कि तू ने उसे बन्दीगृह में डाल रक्खा है ?" माँ के ये वाक्य सुनकर कूणिक को बहुत आत्मग्लानि हुई, और वह फ़ौरन ही अपने पिता की बेड़ियाँ काटने के लिये एक लोहे का हथौड़ा लेकर बन्दीगृह की ओर चल दिया। राजा श्रेणिक ने दूर से कूणिक को आते हुए देखा। उसने समझा कि यह दुष्ट मेरे प्राण लेने के लिये आ रहा है। बस उसने झट से तालपुट विष खाकर अपना प्राणान्त कर लिया।

श्रेणिक के मरने का कूणिक को अत्यन्त दुख हुआ। उसे राजगृह में रहना अच्छा न लगा, अतएव उसने चम्पा को राजधानी बनाया।

(२)

चेलना के हल्ल और विहल्ल नामक दो पुत्र और थे। श्रेणिक ने अपनी मौजूदगी में ही अपने राज्य का बँटवारा कर दिया था। इस बँटवारे के अनुसार कूणिक को समस्त राज्य दिया गया था, हल्ल को सेचनक हाथी, तथा विहल्ल को अठारह लड़ियों का बहुमूल्य हार। हल्ल और विहल्ल हार पहनकर अपनी रानियों के साथ हाथी पर बैठकर उद्यान में जाते और पोखरिणी में क्रीड़ा करते थे। कूणिक की रानी पद्मावती को यह देखकर बड़ी ईर्ष्या होती थी। उसने कूणिक से कहा कि जिस तरह हो हल्ल-विहल्ल से हाथी लाकर दो। परन्तु कूणिक लाचार था, क्योंकि हाथी श्रेणिक का दिया हुआ था। एक दिन कूणिक ने हल्ल-विहल्ल को बुलाकर कहा कि सेचनक हाथी दे दो, मैं तुम्हें आधा राज्य दूंगा, परन्तु उन्होंने इसे स्वीकार न किया।

तत्पश्चात् जब कूणिक ने हल्ल-विहल्ल को अधिक तंग करना आरंभ किया तो वे दोनों कुटुंब-परिवार सहित अपने नाना राजा चेटक के पास वैशाली चले गये। इस पर कूणिक को बहुत क्रोध आया। उसने कहा, "न तो अब मैं हल्ल और विहल्ल को जीवित छोड़ूंगा, और न सेचनक हाथी को।" उसने चेटक के पास दूत भेजा कि यदि कुमार न आना चाहें तो कोई बात नहीं, परन्तु सेचनक हाथी तुम अवश्य लौटा दो। चेटक ने कहलवा भेजा कि जैसे तुम मेरे नाती हो वैसे ही हल्ल-विहल्ल भी हैं। शरणागतों की रक्षा करना क्षत्रिय का धर्म है, अतएव मैं तुम्हें न हल्ल-विहल्ल को सौंप सकता हूँ, न सेचनक हाथी को।

दोनों ओर से युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं। कूणिक ने काल आदि दस कुमारों को बुलवा लिया। उधर चेटक ने काशी और कोशल के अठारह गणराजाओं को युद्ध में सम्मिलित होने का आदेश दिया। अपने-अपने हाथी और घोड़ों पर चढ़कर तथा रथों में बैठकर सैनिकगण रणभूमि में आ आकर एकत्रित होने लगे। घमासान युद्ध हुआ।

कूणिक ने गरुड़-व्यूह रचा और चेटक ने शकटव्यूह। चेटक धनुर्विद्या में अत्यन्त कुशल था—उसके बाण अमोघ होते थे। उसने दस दिन में अपने बाणों द्वारा काल आदि दस कुमारों को स्वर्गलोक पहुँचा दिया।

काल आदि के मरने पर कूणिक की सेना की हिम्मत टूटने लगी। यह देखकर कूणिक ने महा-शिलाकंटक तथा रथमुशल नामक संग्राम रचे। अब चेटक की सेना हारने लगी, और अठारह गणराजा लड़ाई का मैदान छोड़कर भाग गये। चेटक भी मैदान छोड़कर वैशाली में जा घुसा। कूणिक ने वैशाली के चारों ओर घेरा डाल दिया। सेचनक जलते हुए अंगारों के गड्ढे में गिराकर मार दिया गया। उधर हल्ल और विहल्ल ने श्रमण भगवान् महावीर के पास दीक्षा ग्रहण कर ली।

अन्त में चेटक मर गया, और कूणिक ने गधों का हल चलाकर वैशाली को खेत बना डाला।

४३—कल्पक की चतुराई

पाटलिपुत्र (पटना) में कल्पक नामका एक विद्वान् ब्राह्मण रहता था। वह बहुत संतोषी था, और लोगों से भोग दान-मान आदि की विशेष इच्छा न करता था। कल्पक ब्रह्मचारी था, और संन्यास ग्रहण करने की उसकी परम अभिलाषा थी।

एक बार कल्पक अपने छात्रों के साथ जा रहा था। रास्ते में किसी ब्राह्मण का घर पड़ता था। उसकी कन्या जलोदर से पीड़ित रहने के कारण अस्वस्थ रहती थी। वह थी तो बहुत सुन्दर, परन्तु सदा रोगी रहने के कारण उसके साथ कोई विवाह करने को तैयार न होता था।

एक दिन कन्या के पिता ने सोचा कि कल्पक सत्य-प्रतिज्ञ ब्राह्मण है; किसी तरह इसे फँसाना चाहिये। उसने अपने घर में एक कुँआ खोदा और अपनी कन्या को उसमें डाल दिया। जब कल्पक उसके घर के पास से होकर निकला तो ब्राह्मण जोर-जोर से चिल्लाकर कहने लगा—"अरे, पंडित जी, देखिये मेरी कन्या कुँए में गिर पड़ी है, अब क्या करूँ? मैंने प्रण किया है कि जो इसका उद्धार करेगा, उसके साथ मैं इसका विवाह कर दूंगा।"

कल्पक ने दया करके ब्राह्मण की कन्या को कुँए में से बाहर निकाल दिया। कन्या के बाहर आने पर उसके पिता ने कल्पक से कहा, "पंडित जी, कृपया इस कन्या को स्वीकार कीजिये, मैं आपको देने का संकल्प कर चुका हूँ।" कल्पक ने लोकापवाद के भय से कन्या को ग्रहण कर लिया और औषधि आदि द्वारा उसे नीरोग बना लिया।

कल्पक के पांडित्य की प्रशंसा दूर-दूर तक फैल गई थी। उसकी प्रशंसा सुनकर पाटलिपुत्र के राजा नन्द ने कल्पक को बुलाया और अपने

राज-दरबार में रहने के लिये उससे प्रार्थना की। परन्तु कल्पक ने राजा की प्रार्थना अस्वीकार करते हुए कहा, "मैं किसी के आश्रित होकर नहीं रहना चाहता।"

राजा ने एक युक्ति सोची। उसने कल्पक के धोबी को बुलाकर कहा कि अब की बार कल्पक जो कपड़े धुलने के लिये दे, उन्हें वापिस मत देना। संयोगवश कल्पक की स्त्री ने इन्द्रमह के अवसर पर धोबी को अपने कपड़े रँगने के लिये दिये और उससे कहा कि वह उत्सव के दिन उन्हें लौटा दे। परन्तु धोबी ने कपड़े नहीं लौटाये। कल्पक प्रतिदिन धोबी से कपड़े माँगता, मगर धोबी टाल देता। इस तरह आज-कल करते-करते तीन बरस बीत गये, परन्तु धोबी ने कपड़े नहीं लौटाये। कल्पक को बहुत क्रोध आया। उसने धोबी से कहा, "याद रखना मेरा नाम कल्पक नहीं यदि मैं अपने कपड़ों को तेरे रक्त से न रंगूँ?"

एक दिन कल्पक छुरा लेकर धोबी के घर पहुँच गया। धोबी ने डर के मारे अपनी धोबिन से कहा कि जा इसके कपड़े लाकर दे दे। धोबिन ने तुरन्त कल्पक के कपड़े लौटा दिये। परन्तु कल्पक क्रोध से जल-भुन रहा था। उसने छुरे से धोबी का पेट फाड़ डाला, और उसके रक्त से अपने कपड़े रँगकर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की। धोबिन बहुत रोई-चिल्लाई। उसने कहा, "पंडित जी, इसमें मेरे पति का कोई अपराध नहीं था; यह काम राजा का है।" यह सुनकर कल्पक बड़ा चिन्तित हुआ, और उसने सोचा कि अवश्य इसमें कुछ रहस्य है।

वह सीधा राजदरबार में पहुँचा। राजा ने उठकर उसका स्वागत किया, और कुशल समाचार पूछा। कल्पक ने सब हाल कह दिया और कहा कि अब आप जो चाहें करें। उसी समय धोबी लोग (रजकश्रेणि) भी इकट्ठे होकर राजा के पास पहुँचे, परन्तु वहाँ कल्पक को देखकर लौट आये।

कल्पक को मंत्री का पद दे दिया गया, और वह राज्य की व्यवस्था करने

लगा। एक बार की बात है, कल्पक के पुत्र का विवाह था। उसने सोचा, इस अवसर पर राजा और उसके अन्तःपुर को निमंत्रित करना चाहिये। उसने राजा के लिये अनेक आभूषण आदि बनवाये और खूब ठाठ के साथ अभ्यागतों के सत्कार की तैयारियाँ करने लगा। नन्द राजा का पूर्व मंत्री कल्पक से खार खाये बैठा था, क्योंकि उसको हटाकर कल्पक की नियुक्ति की गई थी। उसने सोचा कि कल्पक से बदला लेने का यह सबसे अच्छा अवसर है। उसने कल्पक की दासी को दान-मान आदि द्वारा पहले से ही अपने वश में कर रक्खा था, और उसे उसके द्वारा कल्पक के घर के सब समाचार मिलते रहते थे। पूर्व मंत्री को जब पता लगा कि कल्पक बहुत धूमधाम से राजोपभोग्य सामग्री की तैयारी कर रहा है तो वह नन्द राजा के घर जाकर बोला, "राजन्, आप चाहे कुछ भी करें, परन्तु मैंने जो आपका नमक खाया है, उसे मैं नहीं भूल सकता। देखिये, कहते हुए दुःख होता है कि कल्पक अपने पुत्र का राजतिलक करने की बड़े ज़ोरों के साथ तैयारियाँ कर रहा है।" राजा ने अपने गुप्तचर कल्पक के घर भेजकर मालूम किया तो उसे अपने मंत्री की बात सच मालूम हुई। राजा को बहुत क्रोध आया और उसने कल्पक और उसके कुटुंब को फ़ौरन ही कुँए में डालने की आज्ञा दे दी।

कुँए के अन्दर क़ैदियों को खाने के लिये कोदों और चावल, तथा पीने के लिये पानी दिया जाता था। परन्तु इस भोजन से सब का गुज़ारा नहीं होता था। एक दिन कुटुंब के सब आदमियों ने मिलकर सोचा कि इस तरह तो हम सब मर जायेंगे, अतएव जो राजा से बदला ले सके और कुटुंब का उद्धार कर सके, उसे यह भोजन करके जीवित रहना चाहिये। सब ने मिलकर तय किया कि कल्पक इस कार्य के लिये सब से अधिक योग्य है। धीरे-धीरे भोजन के अभाव में कल्पक के कुटुंब के सब लोग मर गये।

नन्द के शत्रुओं में कल्पक का बहुत अधिक प्रभाव था। जब उसके

शत्रुओं को पता लगा कि नन्द ने अपने मंत्री को सकुटुंब कुंए में डालकर मार डाला है, तो वे बड़े प्रसन्न हुए, और उन्होंने मिलकर पाटलिपुत्र को जा घेरा। अब नन्द को कल्पक की याद आई कि यदि वह जीवित होता तो आज यह नौबत न आती। नन्द को मालूम हुआ कि कल्पक अर्धमृतक अवस्था में अपने अन्तिम दिन गिन रहा है। उसने कल्पक को फ़ौरन ही कुंए से बाहर निकालने की आज्ञा दी। जब कल्पक बाहर आया तो उसका सारा शरीर पीला पड़ गया था। राजवैद्य उसकी चिकित्सा करने में जुट गये। शत्रुओं को जब पता चला कि कल्पक जीवित है तो वे पाटलिपुत्र छोड़कर भाग गये। नन्द ने कल्पक को फिर से मंत्री के पद पर नियुक्त किया।

४४—शकटाल का त्याग

एक बार की बात है, महापद्म नाम का नौंवा नन्द पाटलिपुत्र में राज्य करता था। कल्पक वंश में उत्पन्न शकटाल उसका मंत्री था। उसके स्थूलभद्र और श्रियक नामक दो पुत्र तथा सात कन्यायें थीं। पाटलिपुत्र में वररुचि नामक एक ब्राह्मण रहता था, जो प्रतिदिन आठ सौ नये-नये श्लोकों से नन्द राजा की स्तुति करता था। वररुचि के श्लोकों से प्रसन्न होकर राजा शकटाल की ओर देखता, परन्तु वह उदासीनता दिखाता, अतएव वररुचि राजदान से वंचित रहता था।

एक दिन वररुचि फल-फूल लेकर शकटाल की स्त्री के पास पहुँचा और कहने लगा कि भाभी, तुम्हारे पति द्वारा मेरे श्लोकों की प्रशंसा न होने के कारण मैं दान से वंचित रहता हूं। शकटाल की स्त्री ने अपने पति से कहा। उसने उत्तर दिया, कि मैं झूठी प्रशंसा कैसे करूँ? लेकिन बहुत कहने-सुनने पर शकटाल वररुचि के श्लोकों की प्रशंसा करने लगा, और उसे प्रतिदिन आठ सौ दीनारें मिलने लगीं।

एक दिन शकटाल ने सोचा, इस तरह तो राजकोष बहुत जल्दी खाली हो जायगा। उसने नन्द से कहा, "राजन्, आप इसे इतना द्रव्य क्यों देते हैं?" नन्द ने उत्तर दिया, "तुम्हीं ने तो कहा है कि उसके श्लोक बहुत सुन्दर हैं।" शकटाल ने कहा, "महाराज, यह लौकिक काव्य को अच्छी तरह पढ़ता है, अतएव मैं इसके श्लोकों की प्रशंसा करता हूँ।" राजा ने कहा, "क्या इसके श्लोक लौकिक हैं?" शकटाल ने उत्तर दिया "इन श्लोकों को मेरी लड़कियाँ तक जानती हैं।"

शकटाल की सातों लड़कियाँ अत्यन्त बुद्धिशाली थीं। उसकी पहली लड़की किसी बात को एक बार सुनकर याद कर लेती थी, और

दूसरी को दो बार सुनने से, तीसरी को तीन बार सुनने से, चौथी को चार बार सुनने से, पाँचवीं को पाँच बार सुनने से, छठी को छः बार सुनने से, और सातवीं को सात बार सुनने से सब कुछ याद हो जाता था। एक बार वररुचि राजा की प्रशंसा में नये श्लोक बनाकर लाया। शकटाल की सातों कन्यायें परदे के भीतर बैठ गईं, और वररुचि के श्लोक सुनकर उन्होंने उन श्लोकों को ज्यों के त्यों राजा को कह सुनाया। राजा को अब विश्वास हो गया कि शकटाल ठीक कहता है। राजा ने उसे दान देना बन्द कर दिया।

वररुचि ने अब दूसरा उपाय सोचा। वह रात को गंगा में दीनारें छिपाकर रख देता, और दिन में आकर गंगा की स्तुति करता। तत्पश्चात् वह जोर से लात मारकर गंगा में से दीनारें निकाल लेता और कहता कि गंगामैया उससे बहुत प्रसन्न हैं। राजा के कानों में भी यह बात पड़ी। उसने शकटाल से कहा, "देखो, वररुचि को गंगा दीनारें देती हैं।" शकटाल ने कहा, "यदि मेरे सामने गंगा उसे कुछ दे तो मैं जानूं।"

अगले दिन शकटाल ने एक आदमी को छिपाकर बैठा दिया और उससे कह दिया कि जो कोई वस्तु वररुचि छिपाकर गंगा में रक्खे उसे चुपचाप उठाकर ले आना। थोड़ी देर बाद वररुचि दीनारों की पोटली गंगा में रखकर चला गया। उस आदमी ने वह पोटली वहाँ से लाकर शकटाल को दे दी। नन्द शकटाल को लेकर गंगा के किनारे पहुँचा। वररुचि ने प्रतिदिन की तरह गंगामैया की स्तुति कर पानी में डुबकी लगाई, और हाथों और पैरों से पोटली टटोलना शुरू किया। पोटली न मिलने पर वररुचि अत्यन्त लज्जित हुआ। इसी समय शकटाल ने राजा को वह पोटली दिखाई। वररुचि लज्जित होकर वहाँ से चला गया।

वररुचि को शकटाल के ऊपर बहुत क्रोध आया, और वह उससे बदला लेने का अवसर खोजने लगा। एक बार की बात है, शकटाल के

पुत्र का विवाह होनेवाला था। शकटाल ने राजा को निमंत्रित किया, और उसके स्वागत के लिये बड़ी धूमधाम से तैयारियाँ कीं। शकटाल की दासी द्वारा वररुचि को उसके घर का सब हाल मालूम होता रहता था। उसने सोचा कि शकटाल से बदला लेने का यह बहुत अच्छा अवसर है। उसने बहुत से बालक इकट्ठे किये, और उन्हें लड्डू बाँटता हुआ ज़ोर-ज़ोर से गाने लगा—"नन्द राजा को मालूम नहीं शकटाल क्या कर रहा है। राजा को मारकर वह अपने पुत्र श्रियक को राजगद्दी पर बैठाना चाहता है।" राजा को यह सुनकर बहुत क्रोध आया। उसे मालूम हुआ कि सचमुच शकटाल के घर बड़े ज़ोरों की तैयारियाँ हो रही हैं।

कुछ समय पश्चात् जब शकटाल राजा के पैर छूने आया तो राजा ने उसकी ओर बहुत उदासीनता दिखलाई। शकटाल समझ गया कि अब ख़ैर नहीं। उसने घर आकर श्रियक को सब हाल सुनाया, और कहा कि "यदि तुम कुटुंब को सुरक्षित रखना चाहते हो तो मुझे मार डालो।" श्रियक नन्द राजा का द्वारपाल था। पिता की यह बात सुनकर उसे बड़ा दुःख हुआ। उसने कानों पर हाथ रखकर कहा, "पिता जी, यह आप क्या कह रह हैं?" शकटाल के बहुत समझाने पर भी जब श्रियक न माना तो शकटाल ने कहा, "कोई बात नहीं, मैं तालपुट विष खाकर राजा के पैर छूने जाऊँगा, उस समय तुम मुझे मार देना।" बहुत कहने पर श्रियक यह बात मान गया और अपने कुटुंब की रक्षा के लिय उसने अपने पिता को यमलोक पहुँचा दिया।

राजा के पूछने पर श्रियक ने कहा, "राजन्, जो मेरे स्वामी का बुरा चाहता है, वह चाहे कोई भी क्यों न हो, मेरा शत्रु है, और उसको मारना ही ठीक है।" श्रियक की स्वामिभक्ति से नन्द राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उसे मंत्री का पद दे दिया। श्रियक ने राजा से निवेदन किया कि उसका बड़ा भाई स्थूलभद्र बारह बरस से कोशा नाम की गणिका

के घर रहता है, उसे बुलाकर मंत्री बनाना चाहिये, परन्तु स्थूलभद्र ने उसे स्वीकार न किया, और उसने दीक्षा ले ली।

कोशा स्थूलभद्र से बहुत प्रेम करती थी। भ्रातृस्नेह के कारण अब श्रियक कोशा के घर जाने लगा। कोशा की छोटी बहन उपकोशा थी, जो वररुचि से प्रेम करती थी। एक दिन श्रियक ने कोशा के घर जाकर कहा, "भाभी, देखो, वररुचि कितना अधम है? इसके कारण पिता जी को प्राण त्याग करना पड़ा और हम लोगों को स्थूलभद्र का वियोग सहना पड़ा। तुम अपनी बहन से कहकर किसी तरह इसे मदिरा-पान कराओ।" कोशा ने अपनी बहन से जाकर कहा, "बहन, तुम सुरापान करती हो और वररुचि नहीं करता?" एक दिन उपकोशा के बहुत कहने पर वररुचि ने चन्द्रप्रभा नामक सुरा का पान किया, और तत्पश्चात् धीरे-धीरे उसे उसका चसका लग गया।

एक दिन नन्द श्रियक के साथ बैठा हुआ था। राजा ने श्रियक से कहा, "देखो, तुम्हारा पिता मेरा कितना हितैषी था।" श्रियक ने कहा, "महाराज, आप ठीक कहते हैं, परन्तु इस शराबी वररुचि ने उस निर्दोष को धोखे से मरवा डाला।" राजा ने पूछा, "क्या यह शराब भी पीता है?" मालूम करने पर बात सच निकली। राजा ने उसे गरम-गरम रांगा पिलाकर मरवा डाला।

४५—कूटनीतिज्ञ चाणक्य

गोल्ल देश में चणिय नाम का एक गाँव था। वहाँ चणिय नाम का एक ब्राह्मण रहता था। इसी के घर चाणक्य का जन्म हुआ था। चाणक्य बड़ा हुआ, उसने विद्याध्ययन किया और उसका विवाह हो गया।

एक बार चाणक्य की स्त्री अपने भाई के विवाह में पीहर गई। उसकी अन्य बहनें भी वस्त्राभूषणों से सज्जित होकर आई हुई थीं। वे धनी घरों में ब्याही थीं, अतएव पीहर में उनका विशेष आदर-सत्कार होता था, जब कि चाणक्य की स्त्री को दरिद्र होने के कारण कोई न पूछता था। भाई का विवाह समाप्त हो जाने पर चाणक्य की स्त्री अपने घर लौट आई, परन्तु वह बहुत उदास मालूम होती थी। चाणक्य के पूछने पर उसने सब हाल कह सुनाया।

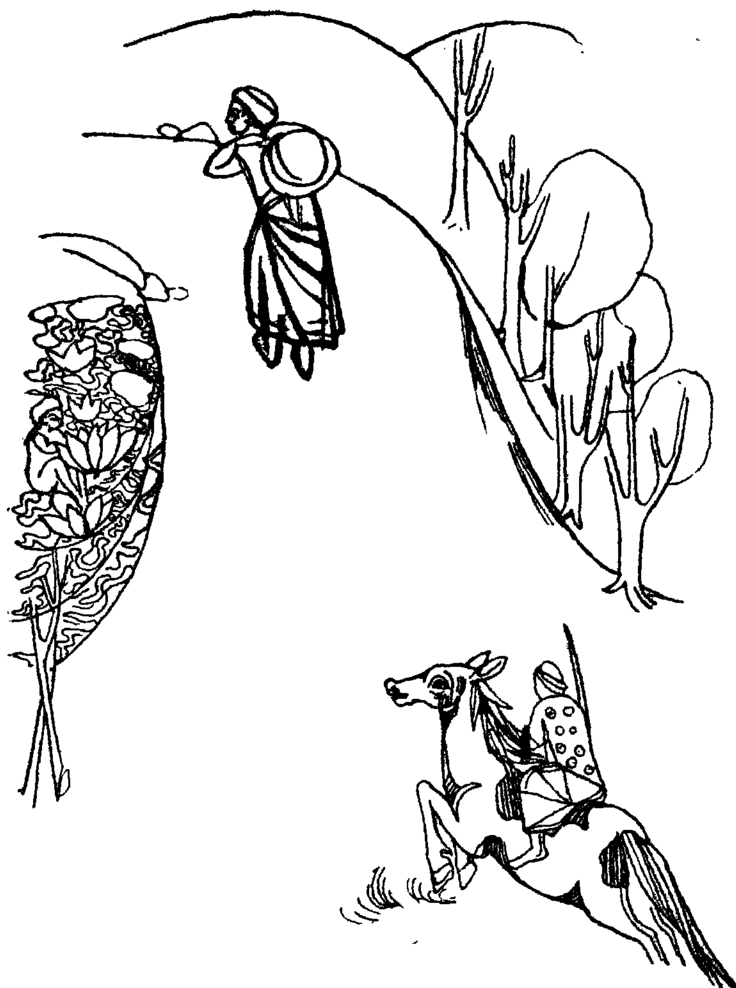
चाणक्य ने सोचा कि किसी तरह धन का उपार्जन करना चाहिये। उसे मालूम हुआ कि पाटलिपुत्र में नन्द राजा ब्राह्मणों को धन देता है। वह कार्तिकी पूर्णिमा के दिन पाटलिपुत्र पहुँचा, और राज-दरबार में जाकर राजा के आसन पर बैठ गया। दासी ने कहा, "भगवन्, कृपा करके आप दूसरे आसन पर बैठ जाइये, यह आसन राजा का है, परन्तु चाणक्य ने कोई ध्यान न दिया। दूसरे आसन पर उसने अपनी कुंडी रख दी, तीसरे पर दण्ड, चौथे पर माला और पाँचवें पर अपना यज्ञोपवीत। राजा के कर्मचारियों ने चाणक्य को धृष्ट समझकर निकाल बाहर किया। चाणक्य को बहुत बुरा लगा, वह कड़वी घूंट पीकर रह गया। उसने प्रतिज्ञा की कि यदि मैं नन्दवंश का समूल नाश न कर दूं तो मेरा नाम चाणक्य नहीं।

चाणक्य वहाँ से चला आया, और नन्द राजा के मयूर-पोषकों के

गाँव में पहुँचा। वहाँ उसे पता लगा कि मयूर-पोषकों के सरदार की कन्या गर्भवती है और उसे चन्द्रपान का दोहद हुआ है। चाणक्य एक परिव्राजक के वेष में सरदार के घर पहुँचा, और कहा कि यदि वह अपनी कन्या के पुत्र को उसे दे देने को तैयार हो तो वह उसका दोहद पूरा करा सकता है। सरदार ने चाणक्य की बात मान ली। चाणक्य ने पूर्णिमा के दिन एक पट-मंडप बनवाया जिसमें एक छिद्र किया गया। इस छिद्र में से चन्द्रमा की किरणें अनेक द्रव्यों से मिश्रित दूध के थाल में गिरती थीं। चन्द्र की किरणों से मिश्रित इस दुग्ध का पान करके कन्या का दोहद पूर्ण हुआ, और यथासमय उसने एक पुत्ररत्न को जन्म दिया, जिसका नाम रक्खा गया चन्द्रगुप्त।

चन्द्रगुप्त बड़ा हो गया। एक दिन चाणक्य ने उससे कहा, चल तुझे राजा बनाऊँ। यह कहकर चाणक्य उसे लेकर चल दिया। चाणक्य ने बहुत से लोगों को इकट्ठा कर पाटलिपुत्र को घेर लिया, लेकिन नन्द के सिपाहियों ने उसे वहाँ से शीघ्र ही भगा दिया। चाणक्य चन्द्रगुप्त को लेकर भागा। उसे पकड़ने के लिये राजा के घुड़सवारों ने उसका पीछा किया। जब चन्द्रगुप्त अधिक न दौड़ सका तो चाणक्य ने उसे एक कमल के तालाब में छिपा दिया, और स्वयं धोबी का वेश बना लिया। इतने में वहाँ एक घुड़सवार आ पहुँचा। उसने चाणक्य से पूछा, "वह लड़का कहाँ गया?" चाणक्य ने इशारे से बता दिया, "देखो, वह सामने के तालाब में छिपा है।" घुड़सवार ने उसे छिपते हुए देख लिया था। वह अपने घोड़े की लगाम चाणक्य को पकड़ाकर, अपनी तलवार वहीं छोड़कर, चन्द्रगुप्त को पकड़ने चल दिया। घुड़सवार जब अपना कवच उतार कर तालाब में उतरने लगा तो चाणक्य ने झट पीछे से आकर तलवार से उसके दो टुकड़े कर दिये। तत्पश्चात् वह चन्द्रगुप्त को घोड़े पर चढ़ाकर भाग गया।

कुछ समय बाद चाणक्य ने हिमवंतकूट पहुँच कर पर्वतक राजा से



मित्रता की, और समय पाकर पाटलिपुत्र पर चढ़ाई कर दी। दोनों सेनाओं में घोर युद्ध हुआ और नन्द राजा हार गया। उसने धर्मद्वार के लिये प्रार्थना की। चाणक्य ने कहा, "जो कुछ वह एक रथ के ऊपर रखकर ले जा सके ले जाये।" नन्द अपनी दोनों पत्नी, राजकुमारी और कुछ द्रव्य लेकर रथ में सवार होकर चल पड़ा। राजकुमारी चन्द्रगुप्त को देखकर उसपर मोहित हो गई। नन्द ने उसे चन्द्रगुप्त को दे दी।

चन्द्रगुप्त और पर्वतक ने नन्द का राज्य आधा-आधा बाँट लिया। इसमें एक विषकन्या भी थी। चन्द्रगुप्त ने उसे राजा पर्वतक को दे दी, परन्तु इसके संपर्क से अग्नि प्रदक्षिणा के समय पर्वतक के शरीर में सर्वत्र विष फैल गया, और वह मर गया। चन्द्रगुप्त दोनों राज्यों का स्वामी बन गया।

चाणक्य ने बड़ी धूमधाम से चन्द्रगुप्त को पाटलिपुत्र के राज-सिंहासन पर बैठाया। चन्द्रगुप्त चाणक्य की सम्मति से राज्य करने लगा। लेकिन नन्द के वंश में अभी कुछ लोग बाक़ी थे। संयोगवश एक दिन चाणक्य ने एक जुलाहे को मकोड़ों को जलाते हुए देखा। पूछने पर मालूम हुआ कि उसके लड़के को एक मकोड़े ने काट लिया है, इसलिये उसने प्रतिज्ञा की है कि वह मकोड़ों का समूल नाश करके ही दम लेगा। चाणक्य ने सोचा, इससे अच्छा व्यक्ति और कौन मिलेगा? चाणक्य ने उस जुलाहे का दान-मान आदि से सत्कार किया, और धीरे-धीरे उसके द्वारा नन्दवंश का समूल नाश करा दिया। इसके अतिरिक्त, और जो लोग चन्द्रगुप्त की आज्ञा न मानते थे, उन्हें चाणक्य ने कठोर दण्ड देकर चन्द्रगुप्त के राज्य को निरापद बना दिया।

४६—वीर कुणाल

पाटलिपुत्र में चन्द्रगुप्त नामक राजा राज्य करता था। उसका पुत्र बिन्दुसार और बिन्दुसार का पुत्र सम्राट् अशोक था। सम्राट् अशोक का पुत्र कुणाल उज्जयिनी का सूबेदार था।

कुणाल जब आठ वर्ष का हुआ तो राजा अशोक ने उसे एक पत्र लिखा कि कुमार अब आठ वर्ष के हो गये हैं, अतएव वे विद्याध्ययन करें। (कुमार—अधीयताम्)। संयोगवश जिस समय अशोक ने यह पत्र लिखा, कुणाल की सौतेली माँ भी वहीं मौजूद थी। उसने सोचा कि कुणाल को इस समय नीचा दिखाने का बहुत अच्छा अवसर है। रानी ने राजा से पत्र माँगा, और जब अशोक किसी कार्य में लगे थे, उसने चुपके से एक सलाई लेकर थूक की बिन्दु से 'अ' के ऊपर अनुस्वार लगा दिया, तथा अब 'अधीयतां' के स्थान पर 'अंधीयतां' हो गया।

रानी ने पत्र राजा को लौटा दिया, और राजा ने उसे बन्द कर, उसपर मोहर लगाकर कुणाल के पास रवाना कर दिया।

पत्र कुणाल के पास पहुँचा। जब उसने खोलकर पढ़ा तो उसमें लिखा था—"कुमार अंधे हो जायँ (कुमार अंधीयताम्)।" पत्र पढ़कर राजकुमार बहुत द्विविधा में पड़ा। उसने सोचा, "मौर्यवंश की आज्ञा का उल्लंघन करना असंभव है।" बस उसने लोहे की तपती हुई सलाई लेकर दृढ़ता-पूर्वक अपनी आँखें आँज लीं।

यह दारुण समाचार जब पाटलिपुत्र पहुँचा तो अशोक को अत्यन्त दुख हुआ। अन्ततः उज्जयिनी का प्रभुत्व अन्य किसी राजकुमार को सौंप दिया गया, और नेत्रहीन कुणाल एक गाँव में जाकर अपना शेष जीवन व्यतीत करने लगे।

कुणाल गानविद्या में अत्यन्त निपुण था। वह अज्ञातवेश धारण कर गाता-बजाता हुआ देश-देश में घूमने लगा। कुछ समय पश्चात् कुणाल पाटलिपुत्र पहुँचा, और उसने राजसभा में परदे के भीतर गाना गाया। कुणाल का मधुर गाना सुनकर सम्राट् अशोक मुग्ध हो गये और प्रसन्न होकर उन्होंने गायक से वर माँगने को कहा।

गायक ने एक श्लोक द्वारा अपना परिचय देते हुए कहा कि वह सम्राट् चन्द्रगुप्त का प्रपौत्र बिन्दुसार का पौत्र और सम्राट् अशोक का नेत्रविहीन पुत्र कुणाल है, और वह महाराज से काकिणी (तत्कालीन एक सिक्का) की याचना करता है।

महाराज अशोक को जब यह मालूम हुआ तो उनकी आँखों में आँसुओं का समुद्र उमड़ पड़ा, और उन्होंने बहुत रुदन किया। अशोक को यह जानकर बहुत दुख हुआ कि कुणाल को एक काकिणी का मिलना भी कठिन हो गया है।

राजमंत्रियों ने अशोक को बताया कि महाराज, क्षत्रिय भाषा में काकिणी के बहाने कुणाल राज्य-शासन की अभ्यर्थना कर रहा है। इस पर अशोक ने कुणाल से पूछा, "नेत्रविहीन मनुष्य राज्य की बागडोर कैसे सम्हाल सकेगा?" कुणाल ने उत्तर दिया, "महाराज, मेरे अभी (संप्रति) एक पुत्र उत्पन्न हुआ है, उसके लिये मैं राज्य की याचना करता हूँ।"

संप्रति राजसभा में उपस्थित किया गया। सम्राट् अशोक अपने पौत्र को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने वचनानुसार उसे राज्य सौंप दिया।

४७—अन्याय का प्रतीकार

कालकाचार्य की कहानी

एक बार की बात है, कालक आचार्य अपनी रूपवती साध्वी भगिनी के साथ उज्जयिनी में विहार कर रहे थे। उस समय उज्जयिनी में राजा गर्दभिल्ल राज करता था। वह कालकाचार्य की भगिनी को देखकर उसके सुन्दर रूप पर आसक्त हो गया, और उसने अपने कर्मचारियों को आज्ञा दी कि वे उसे अन्तःपुर में ले जायँ। जब यह समाचार कालकाचार्य के पास पहुँचा तो उन्होंने गर्दभिल्ल के पास जाकर उसे बहुत समझाया कि साध्वी को वापिस लौटा दो, परन्तु राजा ने एक न सुनी। कालकाचार्य को इससे बहुत आघात पहुँचा, और वे सर्वत्र इस बात को कहते फिरने लगे। गर्दभिल्ल पर जब इसका भी कोई असर न हुआ तो उन्होंने गर्दभिल्ल से बदला लेने की प्रतिज्ञा की, और वे ईरान (पारसकूल) को रवाना हो गये।

ईरान में कालक आचार्य एक शाह (साहि) के यहाँ रहने लगे। एक बार वहाँ के शाहंशाह (साहाणुसाही) ने शाह के पास एक कटार भेजी, जिसका मतलब था कि अब उसकी खैर नहीं। कटार पाकर शाह को बड़ा दुख हुआ। उसने कालकाचार्य से सब बातें कहीं। कालक ने कहा, "तुम चिन्ता न करो; तुम मेरे साथ हिन्दुस्तान (हिंदुगदेश) चलो।" इतने में शाह को मालूम हुआ कि अन्य पिचानवें शाहों को भी इसी प्रकार कटार भेजी गई हैं। शाह ने उनके पास दूत द्वारा कहला भेजा कि आप लोग चिन्ता न करें, सब लोग मिलकर हिन्दुस्तान चलेंगे।

छियानवें शाह ईरान से चलकर काठियावाड़ (सौराष्ट्र) में आये।

उस समय वर्षाऋतु आरंभ हो गई थी, अतएव सब ने वहीं ठहरने का निश्चय किया। सौराष्ट्र को छियानवें मंडलों में विभक्त किया गया, और छियानवें शाह वहाँ रहने लगे। वर्षाऋतु समाप्त होने पर शाहों ने गर्दभिल्ल पर चढ़ाई कर दी। उधर से लाट देश के राजा भी चढ़ आये।

गर्दभिल्ल के पास एक गर्दभी थी जो अत्यन्त भयंकर शब्द करती थी। उसका शब्द सुनकर मनुष्य आदि प्राणी रुधिर वमन करके भय से विह्वल हो जाते और अचेत होकर गिर पड़ते थे। परन्तु शत्रुसेना ने गर्दभी के मुँह खोलने के पहले ही उसके मुंह में ऐसे ज़ोर से तीर मारा कि गर्दभी का मुँह खुला रह गया, और वह कोई शब्द न कर सकने के कारण मर गई। गर्दभिल्ल हार गया। उसे पकड़कर बाँध लिया गया, और उज्जयिनी का ताज शाहों के सिर पर रक्खा गया। कालक ने अपनी भगिनी का उद्धार कर उसे पुनः धर्म में दीक्षित किया।

४८—स्वामिभक्त मंत्री

प्राचीन काल में पइट्ठान (पैठन, हैदराबाद) नगर में शालिवाहन नामक राजा राज्य करता था। शालिवाहन बड़ा पराक्रमी था और उसने बहुत से देश जीतकर अपने राज्य-वैभव को समृद्ध किया था। एक बार की बात है, शालिवाहन ने अपने सेनापति को बुलाया और शीघ्र ही मथुरा को जीतकर लाने को कहा। सेनापति तुरन्त अपनी सेना लेकर मथुरा को रवाना हो गया। परन्तु जब सेना कुछ दूर निकल गई तो उसे याद आया कि मथुरा तो दो हैं, एक उत्तर मथुरा, और दूसरी दक्षिण मथुरा (मदुरा); मालूम नहीं राजा ने कौन सी मथुरा जीतकर लाने का हुकुम दिया है? राजा शालिवाहन अपने कठोर अनुशासन के लिये प्रसिद्ध था। तथा अब मार्ग से लौटकर जाना और राजा से पूछकर इसका निश्चय करना भी उचित न जान पड़ता था। अतएव सेनापति ने अपनी सेना को दो टुकड़ियों में बाँटा, और एक को उत्तर मथुरा की ओर भेजा, तथा दूसरी को दक्षिण मथुरा को।

दोनों स्थानों में घोर युद्ध हुआ। शालिवाहन की सेना बड़ी जबर्दस्त थी, अतएव दोनों जगह उसकी सेना को विजय मिली। सेनापति ने लौट कर हाथ जोड़कर राजा से निवेदन किया, "महाराज, दोनों मथुराओं पर हुज़ूर का अधिकार हो गया है।" सब ने मिलकर राजा को बधाई दी। उसी समय राजा को दूसरा हर्ष-समाचार मिला कि पटरानी ने पुत्ररत्न को जन्म दिया है। ठीक इसी समय राजकर्मचारियों ने आकर निवेदन किया कि महाराज को महान् निधि का लाभ हुआ है। एक साथ इतने हर्ष-समाचार सुनकर राजा की खुशी का ठिकाना न रहा, और वह आनन्दातिरेक से अपनी शय्या को कूटने लगा,

खंभों को गिराने लगा, दीवारों को तोड़ने लगा और यद्वा-तद्वा बकने लगा।

राजा की यह दशा देखकर मंत्री को अत्यन्त खेद हुआ। उसने भी राजभवन की बहुमूल्य वस्तुएँ तोड़नी शुरू कर दीं, और बहुत से खंभे तथा दीवारें गिरा दीं। मंत्री की यह हरकत देखकर राजा को बहुत क्रोध आया। उसने फ़ौरन मंत्री को बुलाकर पूछा कि यह क्या बात है। मंत्री ने उत्तर दिया, "महाराज, मैंने कुछ नहीं किया। यह सब आपका किया हुआ है।" मंत्री की इस धृष्टता पर राजा को बहुत क्षोभ हुआ, और उसने लात मारकर मंत्री को निकाल दिया। कुछ समय बाद जब राजा को उसकी आवश्यकता पड़ी तो राजा ने उसे बुलवाया। परन्तु कर्मचारियों ने आकर कहा कि "महाराज मंत्री को प्राणदण्ड दिया जा चुका है।" राजा ने कहा, "तुम लोगों ने यह बहुत अनुचित किया।"

कुछ दिनों बाद एक राजकर्मचारी ने आकर निवेदन किया, "महा-राज, मंत्री अभी जीवित है।" राजा की आज्ञा से उसे सभा में उपस्थित किया गया। राजा को जब सब बातें मालूम हुई तो वह अपने मंत्री की स्वामिभक्ति से बहुत प्रसन्न हुआ, और दान-मान आदि से सत्कार कर उसकी पदवृद्धि की।

४९—राजा शालिवाहन की नभोवाहन पर विजय

भृगुकच्छ (भड़ौंच) में नभोवाहन नाम का राजा राज्य करता था। उसका कोष बहुत बड़ा था। इधर पइट्ठान का राजा शालिवाहन था, जो अपने सैन्यबल में बहुत बढ़ा-चढ़ा था। नभोवाहन और शालिवाहन दोनों एक दूसरे के शत्रु थे। शालिवाहन प्रत्येक वर्ष नभोवाहन पर चढ़ाई करता, परन्तु नभोवाहन अपने सैनिकों को यथेष्ट द्रव्य देता, और जो सैनिक शत्रु-सैनिकों के हाथ और सिर काटकर लाते, उन्हें विशेष रूप से सम्मानित करता। फलतः शालिवाहन की सेना हार जाती, और उसे मैदान छोड़कर भागना पड़ता।

एक दिन शालिवाहन के मंत्री ने राजा से कहा, "राजन्, इस तरह तो नभोवाहन से लोहा लेना असंभव है। आप एक काम करें कि मुझ पर कुछ दोष लगाकर मुझे देश से निकाल दें।" बस एक षड्यंत्र रच कर मंत्री को निर्वासित कर दिया गया। मंत्री भृगुकच्छ के लिये रवाना हो गया, और नगर के बाहर एक मंदिर में ठहर गया। सामंत-राज्यों में यह बात सर्वत्र फैल गई कि शालिवाहन ने अपने मंत्री को निकाल दिया है। यह खबर जब नभोवाहन ने सुनी तो उसने अपने कर्मचारियों को भेजकर मंत्री को बुलवाया, और उसे अपना मंत्री बनाना चाहा। पहले तो मंत्री ने अस्वीकार कर दिया, लेकिन बहुत कहने-सुनने पर वह नभोवाहन का मंत्री बनने को तैयार हो गया।

मंत्री ने धीरे-धीरे राजकुल में अपना विश्वास पैदा कर लिया, और सब उसको बहुत मानने लगे। धीरे-धीरे उसने राजा को धर्म का उपदेश दे देकर राजकोष का द्रव्य, स्तूप, तालाब, बावड़ी आदि बनवाने में खर्च

कर दिया। तत्पश्चात् उसने एक गुप्त पत्र लिखकर राजा शालिवाहन को सूचित किया कि शत्रु पर चढ़ाई कर दो। खबर पाते ही शालिवाहन ने भृगुकच्छ को चारों ओर से आ घेरा। परन्तु नभोवाहन के पास अभी काफ़ी ख़ज़ाना था। उसने अपने सैनिकों को खूब द्रव्य लुटाया। परिणाम यह हुआ कि शालिवाहन को हारकर लौट जाना पड़ा।

मंत्री ने अब विशेष रूप से राजकोष का द्रव्य खरचना शुरू कर दिया। इस बार उसने रानियों के लिए बहुत से आभूषण आदि बनवा दिये। मंत्री ने पुनः शालिवाहन को पत्र द्वारा सूचना दी। शालिवाहन इस बार बड़ी तैयारी के साथ आया। राजा का कोष खाली हो चुका था। उसकी सेना हार गई, और भृगुकच्छ पर शालिवाहन का अधिकार हो गया।

५०—राजा मूलदेव

पाटलिपुत्र में मूलदेव नाम का एक राजकुमार रहता था। वह अनेक कलाओं में कुशल, गुणग्राही, प्रियभाषी तथा बहुत रूपवान था। मूलदेव को जूआ खेलने का बहुत व्यसन था। एक बार वह घूमता-घूमता उज्जयिनी में आया, और उसने अपने संगीत द्वारा समस्त नगरवासियों के मन को मोह लिया।

उज्जयिनी में देवदत्ता नाम की एक अत्यन्त रूपवती गणिका रहती थी। मूलदेव का मधुर गाना सुनकर उसे मूलदेव से मिलने की तीव्र इच्छा हुई। उसने अपनी दासी को उसे बुलाने भेजा। परन्तु मूलदेव ने गणिकाओं की बहुत निन्दा की, और जाने से इन्कार कर दिया। परन्तु दासी बड़ी कुशल थी, वह किसी तरह राजकुमार को अपनी स्वामिनी के पास लिवाकर ले गई। देवदत्ता ने मूलदेव का बड़ा स्वागत किया। उसकी वीणा बजाने, उबटन लगाने आदि की कलाओं में कुशलता देखकर देवदत्ता अवाक् रह गई, और उसने मूलदेव से प्रतिदिन दर्शन देने की प्रार्थना की। धीरे-धीरे दोनों में प्रीति बढ़ने लगी। देवदत्ता मूलदेव से बहुत प्रेम करती थी, परन्तु उसे उसका जूआ खेलना अच्छा न लगता था। उसने मूलदेव को बहुत समझाया, परन्तु वह न माना।

अचल नाम का व्यापारी देवदत्ता का एक दूसरा प्रेमी था। वह देवदत्ता को मुँहमाँगे वस्त्र-आभूषण आदि दिया करता था। जब उसे ज्ञात हुआ कि देवदत्ता मूलदेव से प्रेम करने लगी है तो वह मूलदेव से ईर्ष्या करने लगा और उसे नीचा दिखाने का अवसर ढूंढ़ने लगा। मूलदेव ताड़ गया, और अब वह अवसर देखकर ही अपनी प्रेमिका के घर जाने लगा। देवदत्ता की माँ ने अपनी बेटी से कहा, "बेटी, मूलदेव को छोड़

दे। ऐसे कंगाल से प्रेम करने से क्या लाभ? अचल को देख, तुझे कितना चाहता है, और तेरे लिये कितना सामान भेजता है?" परन्तु देवदत्ता न मानी। उसने कहा, "माँ, मैं धन की इतनी लालची नहीं हूँ। मैं गुणों की भी क़दर करती हूँ।" मां ने अनेक दृष्टांतों द्वारा देवदत्ता को समझाया, परन्तु वह मूलदेव को छोड़ने को तैयार न हुई।

एक दिन देवदत्ता की माँ ने अचल को बुलाकर कहा, "तुम कोई बहाना बनाकर यहाँ से चले जाओ। तुम्हारे पीछे जब मूलदेव इस घर में प्रवेश करे तो उसका खूब अपमान करो; फिर वह यहाँ आने का नाम न लेगा।" अचल ने ऐसा ही किया। उसने झूठ-मूठ देवदत्ता से कह दिया कि वह किसी काम से बाहर जा रहा है। मूलदेव बेखटके देवदत्ता से मिलने आया। परन्तु कुछ ही देर बाद देवदत्ता की माँ ने आकर खबर दी कि बहुत सा सामान लेकर अचल आया है। देवदत्ता ने मूलदेव से पलंग के नीचे छिप जाने को कहा। अचल ने उसे छिपते हुए देख लिया, परन्तु वह कुछ बोला नहीं। उसने देवदत्ता से कहा, "प्रिये, स्नान की सामग्री तैयार कराओ।" देवदत्ता ने कहा, "बहुत अच्छा, तुम कपड़े निकालो, जिससे मैं तुम्हारे शरीर पर उबटन लगाऊँ।" अचल ने उत्तर दिया, "प्रिये, आज मैंने स्वप्न में कपड़े पहने-पहने उबटन लगवाकर इसी पलंग पर बैठकर स्नान किया है—तुम मेरे इस स्वप्न को सच्चा करो।" देवदत्ता ने कहा, "परन्तु ये क़ीमती गद्दे-तकिये पानी में सब खराब हो जायेंगे।" अचल ने कहा, "देवि, मेरे रहते हुए तुम्हें गद्दे-तकियों की क्या चिन्ता है? मैं इनसे भी बढ़कर तुम्हें बनवा दूंगा।" देवदत्ता की माँ ने अचल की बात का समर्थन किया।

देवदत्ता और अचल ने पलंग पर बैठे-बैठे उबटन लगाकर गरम-गरम पानी से स्नान किया। स्नान का सब पानी मूलदेव के शरीर पर जाकर पड़ा। इतने में शस्त्रधारी पुरुष घर में घुस आये, और इशारा पाकर उन्होंने पलंग के नीचे छिपे हुए मूलदेव के बाल पकड़कर कहा,

"दुष्ट, बता अब तेरा कौन है ?" मूलदेव ने सोचा, इस समय पौरुष दिखाना व्यर्थ है। उसने कहा, "आप जो चाहें करें।" अचल को मूलदेव के ऊपर दया आ गई, और उसने उसे छुड़वा दिया।

मूलदेव कड़वी घूंट पीकर रह गया। वह उज्जयिनी छोड़कर चल दिया। चलते-चलते वह बेन्यातट पहुँचा। संयोगवश नगर का राजा मर गया था, और उसके कोई पुत्र नहीं था। नियमानुसार पाँच दिव्य पदार्थ नगर में घुमाये गये, जो घूमते-घूमते मूलदेव के पास आकर ठहर गये। मूलदेव को देखकर हाथी ने चिंघाड़ मारी, घोड़ा हिनहिनाने लगा, घट अभिषेक करने लगा, चामर डुलने लगे, तथा कमल मस्तक पर जाकर विराजमान हो गया। लोगों ने जयजयकार किया, और मूलदेव को हाथी पर चढ़ाकर नगरी में ले गये। मंत्री तथा सामंत राजाओं ने मूलदेव का अभिषेक किया और उसे विक्रम नाम का राजा बना दिया।

इधर अचल का मूलदेव के प्रति यह बरताव देखकर देवदत्ता को बड़ी ग्लानि हुई और उसने अचल को घर से निकाल बाहर किया। देवदत्ता ने राजा से जाकर निवेदन किया, "राजन्, मैं चाहती हूँ कि मूलदेव को छोड़कर मेरे घर अन्य कोई न आ सके तथा अचल का मेरे घर प्रवेश रोक दिया जाय।" राजा को जब सब बात मालूम हुई तो उसे अचल के ऊपर बहुत क्रोध आया। उसने उसे प्राणदण्ड की आज्ञा दी, परन्तु देवदत्ता को अचल के ऊपर दया आ गई, और उसने राजा से कहकर उसे छुड़वा दिया। अचल उज्जयिनी छोड़कर चल दिया, और वह बहुत सा माल लादकर ईरान के लिये रवाना हुआ।

उधर मूलदेव ने उज्जयिनी के राजा विचारधवल के साथ संबंध स्थापित कर लिया, और कुछ समय बाद देवदत्ता को वहीं बुलवा लिया। नगरवासियों ने देवदत्ता का बहुत शानदार स्वागत किया, और वह मूलदेव की रानी बनकर आनन्दपूर्वक रहने लगी।

कुछ समय बाद ईरान में बहुत सा धन कमाकर अचल बेन्यातट

आकर उतरा। सोने, चाँदी, मोती आदि की थाल लेकर उसने विक्रमराज के दर्शन किये। अचल के माल की जाँच-पड़ताल करने के लिये नगर के पंच आये। राजकर से छुटकारा पाने के लिये अचल ने शंख, सुपारी, चन्दन, अगरु, मंजीठ आदि साधारण माल तो पंचों को दिखला दिया, परन्तु सोना, चाँदी, मणि, मोती, मूंगा आदि को छिपा लिया। स्वयं राजा भी माल की पड़ताल करने आया था। उसने अचल के गुप्तधन को भाँप लिया, और उसे फ़ौरन गिरफ़्तार करने को कहा। बाद में मूलदेव ने दया करके उसे छोड़ दिया, और दान-मान पूर्वक उसे बिदा किया।

५१–मंडित चोर

बेन्यातट नगर में मंडित नाम का एक दर्ज़ी रहता था। वह रात को चोरी करता, और दिन में फोड़े का बहाना बनाकर घुटने में पट्टी बाँध कर राजमार्ग में बैठकर कपड़े रफ़ू करके अपनी आजीविका चलाता था। रात को वह लोगों के घर सेंध लगाता, और चोरी के माल को नगर के पास एक उद्यान के भीतर भौंरे में छिपाकर रख देता था। इस भौंरे के अन्दर एक कुँआ था। मंडित किसी रास्ते चलते आदमी को पकड़ लेता, और उसे पैसे का लोभ देकर उससे चोरी का माल उठवाकर लाता, तथा उसे कुँए के पास एक आसन पर बैठाकर उसका आतिथ्य-सत्कार करने के बहाने, अपनी कन्या द्वारा उसके चरण धुलवाता और तत्पश्चात् उसे कुँए में डलवा कर मार डालता।

इस प्रकार चोरी करते-करते मंडित को बहुत समय हो गया, परन्तु उसकी चोरी का किसी को पता न चला। नागरिकों ने जाकर राजा मूलदेव से निवेदन किया, "महाराज, चोरों से हम लोग बहुत परेशान हो गये हैं, कोई रक्षा का उपाय कीजिये।" राजा ने नगर का दूसरा रक्षपाल नियुक्त किया, परन्तु उससे भी कुछ न हुआ। एक दिन स्वयं राजा मूलदेव नीले कपड़े पहनकर रात को चोर की खोज में चला। मूलदेव एक शून्यगृह में छिपकर बैठ गया। मंडित ने आकर पूछा, "कौन?" मूलदेव ने कहा, "मैं हूँ कार्पाटिक।" मंडित ने कहा, "चल तुझे आदमी बनाऊँ।"

मूलदेव मंडित के पीछे चल दिया। मंडित ने जाकर एक धनिक के घर में सेंध लगाई और वहाँ से बहुत सा धन लेकर उसे मूलदेव के सिर पर रखवा कर चला। मूलदेव आगे-आगे था, और उसके पीछे

तलवार लिये मंडित चोर। भौंरे में पहुँचकर मंडित ने मूलदेव के सिर पर से सामान उतारा, और अपनी बहन से अतिथि के पैर धुलवाने को कहा। मूलदेव को कुँए के पास बिछे हुए आसन पर बैठाया और मंडित की बहन उसके पैर धोने लगी। पैर धोते हुए उसे खयाल हुआ कि इस आदमी के पैर बहुत कोमल हैं, अतएव यह कोई राजा होना चाहिये। मंडित की बहन ने उसे भाग जाने का इशारा किया, और मूलदेव वहाँ से भाग गया। मंडित तलवार लेकर उसके पीछे दौड़ा। मूलदेव भाग कर चौराहे पर बने हुए एक शिवलिंग के पीछे छिप गया। अँधेरे में मंडित ने शिवलिंग को पुरुष समझकर अपनी तलवार से उसके दो टुकड़े कर दिये।

प्रातःकाल फिर मंडित राजमार्ग पर आकर वही अपना रोज का काम करने लगा। मूलदेव ने अपने आदमी भेजकर उसे बुलाया। मंडित समझ गया कि अवश्य दाल में कुछ काला है। राजा ने उसका बहुत आदर-सत्कार किया, और बैठने को उसे आसन दिया। मूलदेव ने उसकी बहन की मँगनी की। मंडित ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् मूलदेव ने थोड़ा-थोड़ा करके मंडित का सब धन ले लिया, और उसे सूली देकर मार डाला।

(३) धार्मिक कहानियाँ

५२–यक्ष या लकड़ा का ठूँठ ?

अर्जुनक माली की कहानी

राजगृह नगर में अर्जुनक नाम का एक माली रहता था; उसकी स्त्री का नाम बंधुमती था। नगर के बाहर अर्जुनक का फूलों का एक बग़ीचा था जिसमें भाँति-भाँति के पँचरंगे फूल खिलते थे। इस बग़ीचे के पास मुद्गरपाणि नामक यक्ष का एक प्राचीन मंदिर था, जिसमें, हाथ में लोहे की एक मुद्गर लिये हुए यक्ष की एक सुन्दर प्रतिमा थी। अर्जुनक बचपन से मुद्गरपाणि का भक्त था। वह प्रतिदिन अपनी फूलों की टोकरियाँ लेकर बग़ीचे में जाता, और फूल चुनता था। इन फूलों में जो फूल सब से सुन्दर होते, उन्हें वह यक्ष को चढ़ाता, यक्ष की पूजा-भक्ति करता और तत्पश्चात् राजमार्ग पर फूल बेचकर अपनी आजीविका चलाता था।

एक बार राजगृह में कोई उत्सव था। अर्जुनक ने सोचा कि इस अवसर पर फूलों की बहुत बिक्री होगी। वह बहुत सुबह उठा और अपनी स्त्री को साथ लेकर बग़ीचे में पहुँचा। दोनों ने फूलों से अपनी टोकरियाँ भर लीं और रोज़ की तरह सुन्दर फूलों से यक्ष की पूजा करने चल दिये।

राजगृह में ललिता नाम की एक गुण्डों की एक जबर्दस्त टोली थी। यह टोली अपना मनमाना काम करती थी, वेश्याघरों में रहती थी, नाना कुकर्म करती थी, और राजा तक को उसकी बात माननी पड़ती थी। इस टोली के छः गुण्डों ने दूर से देखा कि माली अपनी औरत के साथ यक्ष-मंदिर में जा रहा है। बस ये लोग चुपचाप जाकर मंदिर के किवाड़ों



के पीछे छिप गये, और जब माली और उसकी औरत यक्ष की पूजा कर रहे थे, चुपके से किवाड़ों के पीछे से निकले, और माली को रस्सी से बाँधकर उसकी स्त्री के साथ अपनी भोग-लिप्सा शान्त करने लगे।

अर्जुनक बंधन में जकड़ा पड़ा था। वह सोचने लगा—"मैं बचपन से यक्ष की पूजा करता आया हूँ। यदि इस यक्ष में कुछ पौरुष होता तो उसे चमत्कार बताना चाहिये था, परन्तु यक्ष तो सर्वथा मौन है। मुझे तो यह लकड़ी का ठूंठ मालूम देता है।" यक्ष माली के मनोगत भावों को भाँप गया और उसने शीघ्रता से माली के शरीर में प्रविष्ट होकर उसके बंधनों को खोल दिया। उसके बाद यक्ष-प्रविष्ट माली हाथ में मुद्गर लेकर चला, और उसने सब से पहले टोली के छः गुण्डों और अपनी स्त्री को खतम कर डाला। तत्पश्चात् माली नगर के नर-नारियों को मारता हुआ राजगृह की सड़कों पर घूमने लगा। नगर भर में यह बात सब जगह फैल गई कि अर्जुनक को यक्ष चढ़ा है, और वह लोगों को मारता हुआ इधर-उधर फिर रहा है। राजा श्रेणिक के पास जब यह समाचार पहुँचा तो उसने नगर भर में डोंडी पिटवा दी कि अर्जुनक लोगों को बहुत सता रहा है, अतएव कोई भी आदमी लकड़ी, घास, पानी, फल, फूल आदि लेने के लिये नगरी के बाहर न जाये।

उस समय राजगृह में श्रमण भगवान् महावीर का समवशरण आया हुआ था। श्रमणोपासक सुदर्शन सेठ को जब यह मालूम हुआ तो उसने अपने माता-पिता से उनके दर्शनार्थ जाने की अनुमति माँगी। परन्तु उन्होंने यह कहकर मना कर दिया कि यह समय बाहर जाने का नहीं है। किन्तु सुदर्शन न माना और वह शुद्ध वस्त्र पहन कर महावीर की वन्दना करने चल दिया। रास्ते में अर्जुनक ने देखा कि सुदर्शन उसके पास से होकर जा रहा है; वह अपनी मुद्गर उठाकर उसे मारने दौड़ा। परन्तु सुदर्शन ध्यान में लीन हो गया और वह अपने आसन से जरा भी न डिगा। अर्जुनक ने सुदर्शन पर अपनी मुद्गर चलाई परन्तु उसका

कोई असर न हुआ। इतने में यक्ष माली के शरीर को छोड़कर चल दिया। सुदर्शन का ध्यान टूटा तो उसने देखा कि अर्जुनक सामने खड़ा है। सुदर्शन सेठ और अर्जुनक माली दोनों श्रमण भगवान् महावीर की वन्दना के लिये गये, और अर्जुनक ने उनके धर्म में दीक्षा ले ली।

५३—जीवन-क्रान्ति

रोहिणेय चोर की कहानी

राजगृह नगरी में रोहिणेय नाम का एक चोर रहता था। चोर चोरी करने में बड़ा कुशल था और वह किसी की पकड़ में न आता था। रोहिणेय का पिता मरते समय उससे कह गया था, "बेटा देखो, एक बात याद रखना कि जहाँ कोई साधु-संत उपदेश देते हों, वहाँ भूलकर भी मत जाना।"

एक बार की बात है, राजगृह में श्रमण भगवान् महावीर का समवशरण हुआ। सब लोग उनका उपदेश सुनने गये। संयोगवश रोहिणेय उनके पास होकर गुज़रा। रोहिणेय को डर था कि कहीं भगवान् का उपदेश उसके कानों में न पड़ जाय। अतएव उसने अपने दोनों हाथों से अपने कान बन्द कर लिये। संयोग से चलते-चलते रोहिणेय के पैर में एक काँटा चुभ गया। अब वह एक हाथ तो अपने कान पर ज्यों का त्यों रक्खे रहा और दूसरे से पैर का काँटा निकालने लगा। उस समय भगवान् के निम्नलिखित वाक्य रोहिणेय के कान में पड़े—"देवलोक में देवों के गले की माला कुम्हलाती नहीं, देवों के पलक लगते नहीं, उनका शरीर निर्मल रहता है, तथा वे चार अंगुल ज़मीन छोड़कर अधर चलते हैं।" इतने में रोहिणेय के पैर का काँटा निकल गया, और वह फिर दूसरे हाथ को अपने कान पर रखकर चलने लगा।

कुछ समय पश्चात् रोहिणेय राजगृह में चोरी करता हुआ पकड़ा गया। परन्तु राजा के कर्मचारियों को यह नहीं मालूम हो सका कि वह रोहिणेय है या अन्य कोई? उन्होंने उसे पीटना आरंभ कर दिया और

कहा कि सच सच बता तू कौन है ? नीतिशास्त्र के अनेक पंडित वहाँ आये, परन्तु कोई कुछ पता न लगा सका। अन्त में जब कोई उपाय न रहा तो चोर को खूब मद्यपान कराकर उसे बेहोश कर दिया गया और एक अत्यन्त सुन्दर भवन बनाकर, उसे बहुमूल्य गद्दे-तकियों आदि से सजाकर चोर को वहाँ सुला दिया। प्रातःकाल होने पर चोर ने देखा कि वह एक अत्यन्त सुन्दर भवन में लेटा हुआ है, नाना मणियों से जटित भवन जगमग जगमग कर रहा है, उसका शरीर बहुमूल्य वस्त्र और आभूषणों से अलंकृत है, तथा सुन्दरी युवतियों का नाच-गान हो रहा है। नाच-गान के पश्चात् युवतियों ने चोर को प्रणामपूर्वक कहा—"देव, आप बड़े भाग्यशाली हैं, जो आप इस देवलोक में जन्मे हैं। कृपाकर अपने पूर्वभव का वर्णन कीजिये। इस देवलोक का नियम है कि जो अपने पूर्वभव का वर्णन करता है, वह अधिक समय तक देवलोक में वास करता है, अन्यथा वह यहाँ से शीघ्र ही च्युत हो जाता है।

रोहिणेय को तुरन्त भगवान् महावीर के वाक्य स्मरण हो आये— "देवलोक में देवताओं की मालायें मुरझाती नहीं, उनके पलक लगते नहीं, तथा वे अधर चलते हैं।" रोहिणेय ने सोचा कि तीर्थंकर के वाक्य कभी मिथ्या नहीं होते। मालूम होता है कि मुझे फँसाने के लिये यह सब जाल रचा गया है।

रोहिणेय को विचार आया—"महावीर के एक वाक्य का कितना माहात्म्य है! उनके वाक्य-स्मरण से ही आज मुझे जीवनदान मिला, अन्यथा मेरे जीवन का कभी का अन्त हो गया होता। जब उनका एक एक वाक्य इतना क़ीमती है तो उनका समस्त उपदेश कितना कल्याणकारी होगा!" रोहिणेय के जीवन में क्रांति की लहर दौड़ गई और उसने भगवान् के चरणों में बैठकर उनका धर्म स्वीकार किया।

५४—शंब की वीरता

द्वारका नगरी में बलदेव का पौत्र सागरचन्द नामक एक राजकुमार रहता था। उसी नगरी में कमलामेला नाम की एक सुन्दर राजकुमारी रहती थी, जिसकी सगाई उग्रसेन राजा के नाती धनदेव के साथ हुई थी।

एक बार की बात है, कलहप्रिय नारद महाराज सागरचन्द के पास गये और कमलामेला के रूप-गुण की प्रशंसा करने लगे। सागरचन्द के पूछने पर नारद ने कहा कि कमलामेला की सगाई धनदेव के साथ हो चुकी है। सागरचन्द कमलामेला पर मुग्ध हो गया और उसे पाने का उपाय सोचने लगा। उसने राजकुमारी का एक चित्र बनवाया, और वह उसी के ध्यान में लीन रहने लगा। उधर नारद जी कमलामेला के पास पहुँचे और सागरचन्द का खूब बखान किया जिससे राजकुमारी धनदेव की ओर से उदासीन होकर सागरचन्द से प्रेम करने लगी।

राजकुमार सागरचन्द की दशा दिन पर दिन खराब होने लगी। वह दिन-रात राजकुमारी के ध्यान में रहने लगा। एक दिन सागरचन्द का मित्र शंबकुमार चुपके से आया, और उसने पीछे से आकर अपने मित्र की आँखें मीच लीं। सागरचन्द को मालूम नहीं हुआ कि कौन है? वह अन्यमनस्क दशा में एकदम बोल पड़ा, "कमलामेला।" शंब ने कहा, "कमलामेला नहीं, कमलामेल"। तत्पश्चात् सागरचन्द ने अपने मित्र से कहा कि जैसे भी हो कमलामेला को लाकर दो।

उधर राजकुमारी और धनदेव के विवाह की तैयारियाँ हो रही थीं। विवाह की निश्चित तिथि पर राजकुमार शंब ने एक विद्याधर का वेश बनाया, और कमलामेला का अपहरण कर उसे रैवतक उद्यान में

ले आया, और यहाँ राजकुमारी और राजकुमार दोनों का यथाविधि पाणिग्रहण हो गया।

राजकुमारी के अपहरण से वर तथा कन्यापक्ष के लोगों में बड़ा क्षोभ मच गया। यह समाचार जब कृष्ण के पास पहुँचा तो वे दल-बल सहित युद्ध के लिये चल पड़े। पिता-पुत्र में युद्ध ठन गया। शांबकुमार विद्याधर का रूप बनाकर युद्ध करने लगा और उसने अनेक राजाओं को पराजित कर दिया। कृष्ण को बहुत क्रोध आया। परन्तु कृष्ण के उग्र रूप धारण करने के पहले ही शंब ने अपना वास्तविक रूप प्रकट कर दिया, और उनके चरणों में गिरकर क्षमा माँगी।

कृष्ण ने शंब को बहुत डाँटा, और कहा कि तुमने यह बहुत अनुचित किया है। शंब ने विनयपूर्वक कृष्ण से कहा—"पिता जी, राजकुमारी खिड़की में से कूद कर आत्म-हत्या करना चाहती थी; मैं यह देखकर उसे वहाँ से ले आया। बताइये, इसमें मेरा क्या दोष?" कृष्ण शंब की वीरता देखकर बहुत प्रसन्न हुए और उसकी प्रशंसा करने लगे।

५५—शंब का साहस

कृष्ण और जांबवती का प्रिय पुत्र शंब बहुत नटखट था। एक दिन जांबवती ने कृष्ण से कहा, "प्रियतम बहुत दिन से शंब की कोई करतूत नहीं देखी।" कृष्ण ने कहा, "अच्छी बात है।"

एक दिन कृष्ण और जांबवती ने ग्वाला और ग्वालिन का रूप बनाया और दही की मटकी ले द्वारका में दही बेचने चल दिये। शंब ने देखा कि एक ग्वालिन दही बेच रही है। उसने पूछा, "क्या बेचती हो?" ग्वालिन ने कहा, "दही।" शंब ने कहा "आओ, चलो, मुझे दही मोल लेना है।" ग्वालिन शंब के पीछे-पीछे चल दी।

कुछ दूर चलने पर एक मंदिर आया; शंब उसमें घुस गया। उसने ग्वालिन को भी अन्दर आने को कहा। परन्तु ग्वालिन ने अन्दर जाने से इन्कार कर दिया और कहा कि पहले पैसा लाओ। शंब ने कहा, "तू पहले अन्दर आ, फिर मैं पैसा दूंगा।" ग्वालिन ने कहा, "बाहर से दही लेना हो तो लो, अन्दर न आऊँगी।" शंब ने कहा, "अन्दर आना पड़ेगा।" इतना कहकर वह ग्वालिन का हाथ पकड़कर अन्दर ले जाना ही चाहता था कि इतने में ग्वाला कूदकर आया, और ग्वालिन का हाथ पकड़कर बोला, "खबरदार, तुम इसे अन्दर न ले जा सकोगे।" शंब और ग्वाले में लड़ाई छिड़ गई। ग्वाला और ग्वालिन ने जब अपना असली रूप प्रकट किया तो शंब लज्जित हो, अँगूठा दिखा कर वहाँ से भाग गया। शंब सारे दिन शरम के मारे बाहर नहीं निकला। दूसरे दिन बाहर आकर वह एक कील घड़ने लगा। कृष्ण ने पूछा, "शंब, यह क्या बना रहे हो?" शंब ने उत्तर दिया, "पिता जी, एक कील बना रहा हूँ। यह उसके मुँह में ठोकी जायगी जो उस दिन की बात किसी से कहेगा।"

५६–मुनि आर्द्रककुमार

म्लेच्छ देश में आर्द्रकपुर नगर में आर्द्रक नामक राजा राज्य करता था। उसके राजकुमार का नाम था आर्द्रककुमार। एक बार की बात है, राजा ने राजगृह के नरेश श्रेणिक के पास कुछ भेंट भेजी। उस समय आर्द्रककुमार भी वहीं बैठा था; उसने राजपुत्र अभयकुमार को भेंट भेजी। इसके बदले में अभयकुमार ने आर्द्रककुमार को ऋषभ देव की एक प्रतिमा भिजवाई, जिसे पाकर राजकुमार बहुत हर्षित हुआ, और कालांतर में उसने संसार त्याग कर दीक्षा ले ली।

एक बार की बात है आर्द्रक मुनि वसंतपुर में किसी सेठ के बग़ीचे में ध्यान में अवस्थित थे। सेठ की कन्या अपनी सखियों के साथ खेलती खेलती बग़ीचे में पहुँची और मुनि को देखकर परम आनन्दित हुई। उसने प्रतिज्ञा की कि मैं इस मुनि के साथ विवाह करूँगी, अन्यथा कुमारी रहूँगी। कन्या जब विवाह योग्य हुई तो उसका पिता उसके लिये वर की तलाश करने लगा, परन्तु कन्या अपनी प्रतिज्ञा से न टली।

संयोगवश आर्द्रक मुनि कुछ समय पश्चात् फिर वसंतपुर में पधारे, और भिक्षा के लिये सेठ के घर आये। सेठ की कन्या उन्हें पहचान गई, और दोनों का विवाह हो गया। आर्द्रक मुनि ने एक पुत्र पैदा होने तक गृहस्थाश्रम में रहना स्वीकार किया। एक पुत्र होने के बाद जब आर्द्रक ने पुनः दीक्षा लेने का प्रस्ताव अपनी स्त्री के समक्ष रक्खा, तो वह चरखे पर सूत कातने बैठ गई। उसके पुत्र ने आकर पूछा, "माँ यह तुम क्या कर रही हो ?" माँ ने उत्तर दिया, "बेटा, तुम्हारे पिता हम लोगों को अनाथ अवस्था में छोड़कर संसार त्याग कर जा रहे हैं, अतएव मैं निर्दोष रूप से तुम्हारा और अपना पेट भरने के लिये सूत कात रही हूँ।"

यह सुनकर बालक कच्चा सूत लेकर अपने पिता के पास पहुँचा, और उसे उनके चारों ओर पूरकर कहने लगा, "पिता जी, देखें अब आप कैसे जायेंगे ?" पिता ने सूत के धागों को गिनकर देखा तो वे बारह थे। आर्द्रक ने बारह वर्ष गृहस्थाश्रम में रहना स्वीकार किया, और तत्पश्चात् दीक्षा ग्रहण की।

५७–ऋषिकुमार वल्कलचीरी

पोतनपुर में सोमचन्द्र नाम का एक राजा राज्य करता था। एक बार की बात है, रानी ने राजा के सिर में एक सफ़ेद बाल देखकर कहा, "स्वामिन्, यह देखिये, दूत आ गया है।" राजा ने इधर-उधर देखा, मगर दूत कहीं दिखाई न दिया। उसने कहा, "देवि, तुम्हारे नेत्र दिव्य मालूम होते हैं! दूत तो यहाँ नहीं है।" रानी ने राजा को सफ़ेद बाल दिखाते हुए कहा, "लीजिये महाराज, यह धर्मदूत आया है।" सफ़ेद बाल देखकर राजा उदास हो गया। रानी ने कहा, "राजन् क्या बुढ़ापे से लज्जा मालूम होती है?" राजा ने कहा, "देवि, यह बात नहीं। बात यह है कि कुमार अभी बालक है, और प्रजा का पालन ठीक तरह नहीं कर सकता। साथ ही पूर्व पुरुषों से चले आये हुए मार्ग का अनुसरण न करना भी उचित नहीं। अतएव यदि तुम बालक प्रसन्नचन्द्र की देख-भाल करने के लिये तैयार हो तो मैं दीक्षा लूं।" परन्तु रानी ने यह बात स्वीकार न की, और राजा सोमचन्द्र ने अपने पुत्र को गद्दी पर बैठाकर अपनी रानी और दाई के साथ दिशाप्रोक्षित[1] तापसों की दीक्षा ले ली।

सोमचन्द्र अब तापसों के आश्रम में जाकर रहने लगे। दीक्षा लेने के पहले ही रानी गर्भवती थी। उसने यथासमय प्रसव किया, और कुछ समय पश्चात् वह विसूचिका से मर गई। वल्कल में रक्खे जाने के कारण बालक का नाम वल्कलचीरी पड़ा, और माँ के मर जाने से वह जंगली भैंसों के दूध पर पलने लगा। दुर्भाग्य से कुछ समय पश्चात् दाई भी

---

[1] दिशाओं को पूजनेवाला तापसों का एक सम्प्रदाय।

चल बसी, और अब वल्कलचीरी के पालन-पोषण का सब भार ऋषि सोमचन्द्र के ऊपर आ पड़ा।

राजा प्रसन्नचन्द्र को अपने गुप्तचरों द्वारा अपने पिता और भाई का सब हाल मालूम होता रहता था। जब वल्कलचीरी ज़रा बड़ा हुआ तो चित्रकारों ने उसका एक सुन्दर चित्र खींचकर राजा को दिखाया। चित्र देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसने वेश्या की रूपवती कन्याओं को खांड के लड्डू और नाना प्रकार के फल देकर वल्कलचीरी को लुभाने के लिये ऋषियों के आश्रम में भेजा। इतने में वहाँ सोमचन्द्र ऋषि आ गये, और वृक्षों पर छिपे बैठे गुप्तचरों का इशारा पाकर, ऋषि के शाप के डर से वेश्या की कन्यायें वहाँ से भाग गईं। वल्कलचीरी उनके पीछे-पीछे चला, परन्तु उन्हें न पाकर वह अन्यत्र चला गया।

थोड़ी देर बाद जंगल में घूमते-घूमते वल्कलचीरी ने रथ में जाते हुए एक पुरुष को देखकर उसे अभिवादन किया। रथिक ने ऋषिकुमार से पूछा, "आप कहाँ जा रहे हैं?" उसने कहा, "आश्रम में।" दोनों बातचीत करते हुए साथ-साथ चल दिये। ऋषिकुमार रथिक की भार्या को भी 'तात' कहकर संबोधित करता था। उसने अपने पति से पूछा, "प्रिय, यह कहाँ का शिष्टाचार है?" रथिक ने कहा, "सुन्दरि, तुम नहीं जानती यह ऋषिकुमार स्त्रीशून्य आश्रम में पाला पोसा गया है, अतएव इसके लिये स्त्री और पुरुष में कोई भेद नहीं।" तत्पश्चात् रथ में जुते हुए घोड़ों को देखकर ऋषिकुमार ने पूछा, "तात, इन मृगों को आपने रथ में क्यों जोत रक्खा है?" रथिक ने कहा, "कुमार, ये इसी काम के लिये हैं, इसमें कोई दोष नहीं।" रथिक ने कुमार के खाने के लिये लड्डू दिये। कुमार ने कहा, "हाँ, इस तरह के गोल-गोल फल एक बार मुझे ऋषिकुमारों ने दिये थे। कुछ दूर चलकर उन्हें एक चोर मिला। रथिक और चोर का युद्ध हुआ जिसमें चोर घायल होकर गिर पड़ा। रथिक उसका सब धन अपने रथ में लादकर आगे बढ़ा।

नगर में पहुँच कर रथिक ने कुमार को थोड़ा सा द्रव्य देकर बिदा किया, और कुमार अपने ठहरने के लिये किसी झोपड़ी की खोज में चल दिया। घूमता-घामता वह एक वेश्या के घर पहुँचा, और उसे अभिवादन कर बोला, "तात, क्या इस द्रव्य में यहाँ कोई झोपड़ी मिल सकती है ?" वेश्या ने कहा, "हाँ, आप बैठिये।" वेश्या ने एक नाई को बुलवाया और कुमार की अनिच्छा होते हुए भी उसके नख-केश आदि कटवाकर, उसका वल्कल का परिधान उतार कर उसे वस्त्राभूषणों से सज्जित किया, और अपनी कन्या के साथ उसके विवाह की तैयारियाँ आरंभ कर दीं। ऋषिकुमार ने बहुत कहा कि तात, यह मेरा ऋषिवेश आप न उतारिये, परन्तु वेश्या ने कहा कि झोपड़ी में रहनेवाले जो अतिथि हमारे यहाँ आते हैं, उनका यही सत्कार किया जाता है। तत्पश्चात् वर और वधू को एक स्थान पर बैठाया गया, और मंगल-गीत गाये जाने लगे।

इधर ऋषि के वेष में जो गणिकायें कुमार को लुभाने के लिये आश्रम में गई थीं, उन्होंने आकर राजा से कहा, "महाराज, कुमार न जाने जंगल में कहाँ चले गये। हमने उन्हें दूर से देखा, परन्तु ऋषि के भय से हम उनके पास नहीं जा सकीं।" यह समाचार सुनकर राजा प्रसन्नचन्द्र बहुत चिंतित हुए कि न जाने कुमार कहाँ भटकता होगा ? न तो वह लौटकर पिता के पास गया होगा और न अभी वह यहीं आया है।

इतने में राजा के कानों में मृदंग की ध्वनि सुनाई पड़ी। उसने अपने कर्मचारियों को बुलाकर पूछा, "पोतनपुर में ऐसा कौन व्यक्ति है जो मेरे दुखी होने पर सुख से जीवन बिताता हो ?" पता लगाने पर मालूम हुआ कि वेश्या की कन्या का विवाह हो रहा है। वेश्या को बुलाया गया। उसने कहा, "महाराज, मुझे एक ज्योतिषी ने कहा था कि तेरे घर जो कोई तापसरूपधारी युवक आये उसके साथ अपनी कन्या का विवाह कर देना। तुम्हारी कन्या उसे पाकर बहुत सुखी होगी। ज्योतिषी के कथनानुसार आज मेरे घर एक युवक आया है, मैं उसके साथ अपनी

कन्या का विवाह कर रही हूँ।" यह सुनकर राजा ने वेश्या के घर अपने आदमी भेजकर युवक को बुलाया। प्रसन्नचन्द्र अपने लघुभ्राता के समाचार जान बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने उसे वधू सहित वहीं बुला लिया, और उसे अपना आधा राज्य सौंप दिया।

इधर ऋषि सोमचन्द्र कुमार को आश्रम में न देख शोक-सागर में डूब गये, और कुमार की याद कर करके अंधे हो गये। कुमार को राज-भवन में रहते-रहते जब बहुत वर्ष बीत गये, तो एक दिन वह आधी रात को उठा और अपने पिता की याद कर शोक से विह्वल हो गया। वह सोचने लगा कि "जो पिता मुझ से क्षण भर के लिये भी अलग न होते थे, उनका क्या हाल होगा ?"

राजा प्रसन्नचन्द्र और कुमार वल्कलचीरी दोनों आश्रम में जाकर अपने पिता से मिले। बस ऋषि सोमचन्द्र का चिरकाल से रुका हुआ वाष्प-स्रोत उमड़कर बह चला, और उनके दोनों नेत्र खुल गये। तत्पश्चात् वल्कलचीरी अपने पिता के उपकरणों को देखने के लिये कुटिया में पहुँचा। उसने देखा कि उनके सब उपकरण धूल से मैले हो गये हैं। वह उन्हें अपने वस्त्र से पोंछ-पोंछ कर रखने लगा। इसी समय वल्कलचीरी को अपने पूर्वभव का स्मरण हो आया और उसके कर्मों का बंधन टूट गया। वल्कलचीरी केवली (बुद्ध) हो गये, और उन्होंने अपने पिता और भाई को सदुपदेश दिया।

५८—धूर्त्त वणिक्

चंपा में धन्य नाम का एक व्यापारी रहता था। उसके घर सर्वश्रेष्ठ मोतियों का हार और हारप्रभा नाम की एक सुन्दर कन्या थी। वसंतपुर के जिनदत्त नामक श्रमणोपासक व्यापारी ने धन्य से इन दोनों चीजों को बहुत माँगा, परन्तु धन्य देने के लिये राज़ी न हुआ।

एक दिन जिनदत्त एक धूर्त्त का वेष बनाकर चंपा के लिये रवाना हो गया। वहाँ उसने एक उपाध्याय के पास जाकर कहा—"गुरू जी, मैं विद्या पढ़ना चाहता हूँ।" उपाध्याय ने कहा, "तुम खुशी से विद्या पढ़ो, परन्तु कहीं अपने भोजन की व्यवस्था कर लो।" जिनदत्त को मालूम हुआ कि धन्य सरजस्क साधुओं को भोजन-वस्त्र देता है, अतएव उसने धन्य से जाकर कहा कि, "यदि आप मेरे भोजन की व्यवस्था कर दें तो बड़ी कृपा हो।" धन्य ने अपनी कन्या से कह दिया कि इस विद्यार्थी को भोजन करा दिया करो।

जिनदत्त ने सोचा, चलो यह बहुत अच्छा हुआ—'मेंडक की रखवाली का भार और साँप को'। धीरे धीरे जिनदत्त ने धन्य की कन्या अपने वश में कर ली, यहाँ तक कि वह उसके साथ चलने को तैयार हो गई। जिनदत्त ने कहा, "प्रिये, जल्दी करना ठीक नहीं; धीरे-धीरे काम चलने दो।"

एक दिन जिनदत्त ने हारप्रभा से कहा, "तुम पागल बन जाओ, और वैद्यों से चिकित्सा किये जाने पर भी अच्छी न होना।" उसने ऐसा ही किया। हारप्रभा के पिता को बड़ी चिन्ता हुई। उसने जिनदत्त से पूछा कि क्या करना चाहिये। जिनदत्त ने कहा, "मेरे पास एक परंपरागत विद्या है परन्तु उसकी विधि बहुत कठिन है। उसमें शुद्ध ब्रह्मचारियों की आवश्यकता होती है।" धन्य ने कहा, "यदि सरजस्क साधुओं से

काम चल जाय तो मैं उन्हें बुलवा सकता हूँ।" जिनदत्त ने कहा, "आप उन्हें बुलवा लीजिये, परन्तु यदि वे ब्रह्मचारी न हुए तो काम न बनेगा।"

अगले दिन चार सरजस्क साधु और शब्दभेदी दिक्पालों को बुलाया गया। एक मंडल बनाया गया, और दिक्पालों से कहा गया कि जिस दिशा से गीदड़ का शब्द सुनाई दे, उस ओर फ़ौरन तीर छोड़ना। सरजस्क साधुओं से कहा गया कि 'हुम् फट्' की आवाज़ सुनने के पश्चात् तुम लोग फ़ौरन ही गीदड़ का शब्द करना। कन्या से कहा गया कि तुम ज्यों की त्यों रहना। यथाविधि सब कार्य सम्पन्न हुआ। सरजस्क साधु तीर से घायल होकर मर गये, परन्तु हारप्रभा की हालत में कोई परिवर्तन न हुआ। धन्य के पूछने पर जिनदत्त ने कहा, "इसमें मेरा क्या दोष है? मैंने पहले ही कह दिया था यदि साधु ब्रह्मचारी न हुए तो कार्यसिद्धि न होगी।"

जिनदत्त ने कहा कि जो साधु गुप्तियों[1] का पालन करते हैं, वे ब्रह्मचारी कहे जाते हैं, अतएव कहीं से उन्हें बुलवाना चाहिये। धन्य ने अनेक साधुओं से पुछवाया, परन्तु कुछ न हुआ। अन्त में वे लोग निर्ग्रंथ साधुओं के पास गये। मालूम हुआ कि वे गुप्तियों का पालन तो करते हैं, परन्तु निर्ग्रन्थ होने के कारण कहीं आ-जा नहीं सकते। जिनदत्त ने कहा, "चिन्ता की कोई बात नहीं, उनकी पूजा करने से भी काम चल जायगा।" तत्पश्चात् साधुओं के नाम लिखकर उनका पूजन किया गया। पहले की तरह मंडल बनाया गया। दिक्पाल आये। इस बार गीदड़ का शब्द सुनाई न दिया, और कन्या अच्छी हो गई।

धन्य निर्ग्रंथ श्रमणों का भक्त बन गया, और जिनदत्त को धर्मोपकारी समझ कर उसने उसे अपनी कन्या और हार दोनों चीज़ें दे दीं।

---

[1]मन, वचन और काय की चंचलता को वश में करने को गुप्ति कहते हैं।

५६—राजा करकण्डू

चंपा नगरी में राजा दधिवाहन अपनी रानी पद्मावती के साथ राज्य करता था। एक बार रानी गर्भवती हुई और उसे हाथी पर बैठकर उद्यान में विहार करने का दोहद हुआ। रास्ते में राजा का हाथी बिगड़ गया, और उन दोनों को लेकर जंगल की ओर भागा। रास्ते में एक वट का वृक्ष पड़ा, राजा ने उसकी शाखा पकड़ कर अपनी जान बचाई, परन्तु रानी को लेकर हाथी भाग गया। रानी एक निर्जन अटवी में पहुँची और दिशाभ्रम के कारण बहुत समय तक इधर-उधर भ्रमण करती रही। थोड़ी देर बाद रानी को एक तापस मिला। उसने रानी का कंदमूल फलों से सत्कार किया और उसे दंतपुर का मार्ग बता दिया।

दंतपुर पहुँचकर पद्मावती ने एक आर्या के पास दीक्षा ले ली। पहले तो रानी ने अपना गर्भ गुप्त रक्खा, परन्तु जब सब को मालूम होने लगा तो उसने प्रकट कर दिया। यथासमय रानी ने प्रसव किया और वह अपने पुत्र को अपने नाम की अँगूठी देकर, एक सुन्दर कंबल में लपेटकर स्मशान में छोड़ आई। स्मशानपालक ने शिशु को उठाकर अपनी स्त्री को सौंप दिया। साध्वियों ने जब गर्भ का हाल पूछा तो उसने कह दिया कि मृत शिशु हुआ था, उसे मैंने फिकवा दिया है। इधर पद्मावती ने स्मशानपालक के साथ मित्रता कर ली, और वह अपने शिशु को मोदक आदि जो भिक्षा में मिलता, लाकर देती। बालक के सारे शरीर में खुजली हो गई थी, अतएव उसका नाम करकण्डू पड़ा।

एक बार करकण्डू अपने माता-पिता के साथ कंचनपुर गया। संयोगवश वहाँ का राजा मर गया था। मंत्रियों ने राजा की खोज में घोड़ा छोड़ा। यह घोड़ा, जहाँ करकण्डू पड़ा सो रहा था, वहाँ आया

और उसकी प्रदक्षिणा करके उसके सामने खड़ा हो गया। करकण्डू के शरीर पर राजा के लक्षण देखकर नागरिकों ने जयघोष किया, और नन्दिवाद्य की घोषणा की। करकण्डू जँभाई लेता हुआ उठा। नागरिकों ने उसे घोड़े पर बैठाया, और उसे राजमहल में ले गये। जब ब्राह्मणों के पास यह खबर पहुँची कि एक चांडाल के पुत्र को राजगद्दी दी जा रही है तो उन्होंने इसका विरोध किया। परन्तु किसी की कुछ न चली। उसने अपने प्रताप से सब को वश में कर लिया, और वाटधानक के चांडालों को शुद्ध करके ब्राह्मण बनाया।

एक बार की बात है, करकण्डू तथा चम्पा के राजा दधिवाहन में किसी बात को लेकर मनोमालिन्य हो गया, और युद्ध की नौबत आ पहुँची। साध्वी पद्मावती शीघ्र ही चम्पा पहुँचकर राजा दधिवाहन से मिली, और उसे बताया कि करकण्डू उसी का पुत्र है। दधिवाहन ने हथियार डाल दिये, और अपने पुत्र को राज्य सौंपकर साधु हो गया।

राजा करकण्डू महाशासन के नाम से प्रख्यात हुआ। उसने बहुत समय तक राज्य-संपदा का उपभोग किया। एक बार एक बैल को देख कर करकण्डू को संसार से वैराग्य हो आया। करकण्डू ने दीक्षा ग्रहण कर ली, तथा कंपिला के राजा दुर्मुख, मिथिला के राजा नेमि, और पुरुषपुर (पेशावर) के राजा नग्नजित् के साथ बहुत काल तक जनपद विहार करते हुए प्रत्येकबुद्ध अवस्था प्राप्त की।

६०—द्वारका-दहन

द्वारका नगरी में वसुदेव और देवकी का पुत्र कृष्ण वासुदेव राज्य करता था। बलदेव और जराकुमार उसके दो ज्येष्ठ भ्राता थे, तथा शंब, प्रद्युम्न आदि अनेक पुत्र। एक बार की बात है, द्वारका में भगवान् अरिष्टनेमि का समवशरण आया। कृष्ण वासुदेव आदि अनेक यादव उनके दर्शन के लिये गये। धर्मकथा समाप्त होने पर अरिष्टनेमि ने भविष्यवाणी की—"द्वीपायन ऋषि द्वारा धन-धान्य आदि से पूर्ण इस द्वारका का नाश होगा। शंब आदि कुमार मद्यपान कर ऋषि का अपमान करेंगे, जिसके फलस्वरूप द्वीपायन अपने तेजबल से इस नगरी को भस्म कर देगा, जिससे यादववंश का नाम-निशान बाक़ी न रहेगा; तथा जराकुमार के बाण से कृष्ण का प्राणान्त होगा।" अरिष्टनेमि की यह वाणी सुनकर यादव लोग बहुत चिंतित हुए, और कृष्ण ने नगर भर में घोषणा करा दी कि नगर की सब मदिरा कदंबवन की गुफ़ा में फेंक दी जाय। जराकुमार भी अरिष्टनेमि की वाणी सुनकर बहुत दुखी हुआ और वह अपना घर छोड़कर वनवास के लिये चला गया।

छः महीने गुफ़ा में पड़ी-पड़ी सुरा खूब पककर सुस्वादु बन गई। संयोगवश शंबकुमार का शिकारी घूमता-फिरता वहाँ आया, और उस सुन्दर स्वच्छ सुरा का पान कर अत्यन्त संतुष्ट हुआ। उसने जाकर शंब को खबर दी। शंबकुमार अन्य कुमारों को साथ लेकर वहाँ पहुँचा, और सब ने जी भरकर सुरा का पान किया। सुरा पान कर सब कुमार मत्त होकर नाचने-गाने लगे, और परस्पर आलिंगन करते हुए खेलते-कूदते एक पर्वत पर पहुँचे। संयोगवश वहाँ द्वीपायन ऋषि अपनी तपश्चर्या में बैठे हुए थे। ऋषि को देखकर कुमारों को बहुत क्रोध आया, और उन्होंने ऋषि को हाथ, लात और घूसों से मारना-पीटना शुरू कर दिया।

ऋषि बेहोश होकर भूमि पर गिर पड़ा, और कुमार उसे वहीं छोड़कर द्वारका लौट आये।

कृष्ण के गुप्तचरों ने जाकर कृष्ण से सब हाल कहा। कृष्ण ने कुमारों के दुष्कृत्य की बहुत निन्दा की, और बलदेव को साथ लेकर द्वीपायन को शान्त करने चले। द्वीपायन क्रोध से अंधा होकर काँप रहा था। कृष्ण और बलदेव दोनों ने ऋषि को बहुत समझाया, परन्तु उस पर कोई असर न हुआ। उसने कहा—"मैं द्वारका को भस्म करने की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ।" दोनों भाइयों को ऋषि के वचन सुनकर बहुत संताप हुआ। घर लौटकर कृष्ण ने दूसरी घोषणा कराई—"द्वीपायन ऋषि द्वारका को भस्म करने की प्रतिज्ञा कर चुका है, अतएव सब लोगों को चाहिये कि वे तप-उपवास पूर्वक समय बितायें, और बलि, पुष्प, गंध, धूप आदि से जिन भगवान की पूजा करें।" यह घोषणा सुनकर नगरी के सब लोग बहुत चिन्तित हुए, तथा प्रद्युम्न, शंब आदि राजकुमारों ने बहुत से लोगों के साथ अरिष्टनेमि के पास दीक्षा ले ली।

इधर जब द्वीपायन ने देखा कि नगरी के लोग पूजा-पाठ में लीन हैं तो वह चुप हो गया, परन्तु वह अवसर देखता रहा। कुछ समय बाद द्वारकावासियों ने समझा कि द्वीपायन निस्तेज हो गया है, अतएव लोग निर्भय होकर फिर आमोद-प्रमोद में समय बिताने लगे। द्वीपायन ने मौक़ा पाकर बहुत से तृण, काष्ठ, वृक्ष, लता आदि के ढेर लगाकर उनमें आग लगा दी। क्षण भर में वह आग समस्त नगर में फैल गई। बड़े-बड़े भवन टूट-टूट कर गिरने लगे, हाथी, घोड़े, बैल, गाय आदि पशु चिंघाड़ मारकर इधर-उधर भागने लगे, तथा समस्त नगरी में दारुण हाहाकार मच गया। कृष्ण और बलदेव ने नगरी की जब यह दशा देखी तो वे रोहिणी, देवकी तथा अपने पिता वसुदेव को रथ में बैठाकर जल्दी-जल्दी भागने लगे। परन्तु रथ भी जलने लगा, और दोनों भाइयों को अपने माता-पिता को आग में जलते हुए छोड़कर भागना पड़ा।

द्वीपायन की लगाई हुई आग छः महीने तक जलती रही, जिसमें कृष्ण की अनेक रानियाँ तथा सगे-संबंधी जलकर भस्म हो गये। कृष्ण और बलदेव को संसार से बहुत वैराग्य हुआ और उन्होंने दक्षिण मथुरा (मदुरा) के प्रति प्रस्थान किया। दोनों भाई सौराष्ट्र पारकर हस्तिकल्प (हाथब, भावनगर) नगर में पहुँचे, और वहाँ से कोसुंब नामक अरण्य में गये। यहाँ पहुँचकर कृष्ण को बहुत ज़ोर की प्यास लगी, और बलदेव पानी की खोज में चले। कृष्ण रेशमी वस्त्र ओढ़कर सोये हुए थे। इतने में वहाँ जराकुमार धनुष-बाण लेकर व्याधे के वेष में आया। कृष्ण को सोते देख जराकुमार ने समझा कि कोई हरिण बैठा है। बस उसने फ़ौरन ताक कर उसके पैर में एक तीर मारा। कृष्ण एकदम सोते-सोते चिल्लाकर बोले—"अरे, यह किसने मुझ निरपराधी पर बाण चलाया?" जराकुमार को अब मालूम हुआ कि यह हरिण नहीं, बल्कि कोई पुरुष है। जराकुमार ने अपना परिचय देते हुए बताया कि अरिष्टनेमि की भविष्यवाणी सुनकर अपने बंधुजनों को छोड़कर मैं घर से निकल गया और तभी से मैं वन-वन की धूल छानता फिरता हूँ। कृष्ण को जब मालूम हुआ कि वह उसका भाई जराकुमार है तो उसने अपना परिचय दिया कि मैं वही तुम्हारा अभागा भाई कृष्ण हूँ जिसके कारण तुम भटकते फिरते हो। जराकुमार ने कृष्ण को गले से लगा लिया और रुदन करने लगा। कृष्ण का अंत समीप आ रहा था। उसने जराकुमार को वहाँ से तुरंत चले जाने को कहा।

कुछ समय बाद बलदेव एक कमल के पत्ते में पानी लेकर लौटे। कृष्ण को लेटे देख उन्होंने समझा कि कृष्ण सोया हुआ है। परन्तु जब काफ़ी समय हो गया तो उन्होंने कपड़ा उठाकर देखा। मालूम हुआ कि कृष्ण अब इस दुनिया में नहीं है। बलदेव एकदम मूर्च्छित हो गिर पड़े। उन्होंने अपने भाई के वियोग में बहुत विलाप किया। बहुत समय तक वे उसके मृतशरीर को कंधे पर रखकर घूमते रहे। अन्त में उन्होंने उसकी दाह-क्रिया की, और तुंगिया पर्वत मांगीतुंगी, नासिक पर उग्र तप कर वे स्वर्ग सिधारे।

६१—कपिल मुनि

कौशांबी नगरी में जितशत्रु नाम का राजा राज्य करता था। उसके दरबार में चौदह विद्याओं में पारंगत काश्यप नाम का ब्राह्मण रहता था। उसके पुत्र का नाम था कपिल। कपिल जब छोटा था तो उसका पिता परलोक सिधार गया काश्यप का पद किसी अन्य ब्राह्मण को मिल गया। जब यह ब्राह्मण घोड़े पर बैठ कर छत्र लगाकर अपने नौकरों-चाकरों के साथ निकलता तो कपिल की माँ को बहुत लगता, और वह अपने बीते हुए दिनों की याद कर रोने लगती। कपिल पूछता तो वह कहती, "बेटा, कभी तेरे पिता भी इसी तरह घोड़े पर सवार होकर जाते थे। उस समय मैं गर्व से फूली न समाती थी।" कपिल ने कहा, "माँ, क्या मैं अपने पिता की पदवी को नहीं पा सकता ?" उसकी माँ ने कहा, "बेटा, तू अवश्य उस पदवी को पा सकता है, परन्तु तू पढ़ा-लिखा नहीं। तथा यहाँ तुझे ईर्ष्या के कारण कोई पढ़ाने को तैयार न होगा। अब तेरे लिये एक ही रास्ता है कि तू श्रावस्ती (सहेट-महेट, गोंडा) चला जा। वहाँ तेरे पिता के प्रिय मित्र इन्द्रदत्त ब्राह्मण रहते हैं, वे तुझे पढ़ा देंगे।"

कपिल अगले दिन श्रावस्ती के लिये रवाना हो गया। श्रावस्ती पहुँचकर कपिल ने प्रणाम पूर्वक पंडित जी के चरण छूए, और सब वृत्तांत कह सुनाया। पंडित इन्द्रदत्त ने अपने मित्र के पुत्र से मिलकर हर्ष प्रदर्शित किया, और उसे पढ़ाने की स्वीकृति दे दी। भोजन के लिये उन्होंने उसका एक नगर के सेठ के घर प्रबंध कर दिया।

कपिल सेठ के घर भोजन करता और गुरू जी के पास विद्या पढ़ता था। सेठ के घर एक दासी थी जो प्रतिदिन कपिल को भोजन परोसती

थी। धीरे-धीरे कपिल का उससे प्रेम हो गया। कपिल अब पढ़ना-लिखना सब भूल गया, और उसका समय अपनी प्रेमिका के चिन्तन, मनोरंजन आदि में बीतने लगा।

एक बार दासियों का कोई उत्सव आया। दासी ने कपिल से कुछ फल-फूल लाने को कहा। परन्तु कपिल के पास पैसे कहाँ थे? दासी ने एक मार्ग बताया कि यहाँ के राजा का नियम है कि जो सुबह सब से पहले उठकर उसका अभिवादन करता है, उसे दो मासे सोना मिलता है; अतएव तुम यदि वहाँ जा सको तो काम बन सकता है। यह बात कपिल की समझ में आ गई। अगले दिन वह सुबह उठकर राजा के महल की ओर चला। रास्ते में उसे रक्षपाल मिले, और उन्होंने उसे चोर समझ कर पकड़ लिया। कपिल जब राजा के पास लाया गया तो उसने सब हाल सच-सच कह दिया। राजा को कपिल के भोलेपन पर बहुत दया आई, और उसने उसे मनचाही वस्तु माँगने को कहा।

कपिल पास के बग़ीचे में बैठकर सोचने लगा—"दो मासे सोने से क्या होगा? यह तो कपड़े-गहने बनाने के लिये भी काफ़ी नहीं, अतएव मैं क्यों न सौ मोहरें माँगूं?" फिर सोचा कि यह मकान, गाड़ी आदि बनाने के लिये काफ़ी न होगा, अतएव मैं क्यों न हज़ार मोहरें माँगूं?" तत्पश्चात् वह हज़ार से लाख पर पहुँचा, लाख से करोड़ पर, करोड़ से सौ करोड़ पर, और सौ करोड़ से हज़ार करोड़ पर पहुँच गया। सोचते-सोचते कपिल के मन में आया—"यह भी खूब रहा! दो मासे सोने से मैं कहाँ पहुँच गया और फिर भी संतोष नहीं! तथा मैं परदेश में हूँ, और अपनी माँ को छोड़कर यहाँ विद्या पढ़ने आया हूँ। मैं अपने गुरू के उपदेश की अवगणना कर अपने कुल की मान-मर्यादा छोड़कर परस्त्री से प्रेम करने लगा हूँ, यह कितना निन्द्य है!"

विचार करते-करते कपिल के कर्मबंधन शिथिल पड़ गये, और उसकी आत्मा में प्रकाश की तीव्र किरण दौड़ गई। वह सोचने लगा—"अरे

मन, अब क्या तुझे सोने की आवश्यकता है ? और क्या विषयोपाधि की आवश्यकता है ?" कपिल का चित्त शान्त हो गया, उसकी आत्मा में विवेक और ज्ञान का उदय हुआ। कपिल ने तपश्चरण कर स्वयंबुद्ध की पदवी पाई।

६२—मुनि चित्र और संभूत

चांडाल पुत्रों की कहानी

वाराणसी (बनारस) नगरी में शंख नामक राजा राज्य करता था। नमुचि उसका मंत्री था। एक बार नमुचि से कोई अपराध हो गया, और राजा ने चांडालों के मुखिया भूतदत्त को बुलाकर, लोगों से छिपाकर, नमुचि के बध करने की आज्ञा दी। भूतदत्त के चित्र और संभूत नामक दो पुत्र थे। उसने मंत्री से कहा कि, "यदि तुम मेरे पुत्रों को पढ़ाना स्वीकार करो तो मैं तुम्हारी रक्षा कर सकता हूँ।" मंत्री ने यह स्वीकार कर लिया, और वह भौंरे में रहकर चांडाल के पुत्रों को पढ़ाने लगा। कुछ समय बाद नमुचि अपनी दुश्चरित्रता के कारण वहाँ से निकाल दिया गया, और वह हस्तिनापुर पहुँच कर सनत्कुमार चक्रवर्ती का मंत्री बन गया।

चित्र और संभूत नृत्य, गीत आदि कलाओं में निष्णात हो गये थे। वे वेणु, वीणा आदि बजाते, और गंधर्व गाते हुए इधर-उधर घूमते थे। एक बार वाराणसी में मदन महोत्सव आया, और लोग अपनी-अपनी टोलियाँ लेकर नाचते-गाते हुए निकले। चित्र और संभूत भी अपनी टोली लेकर चले। दोनों का कण्ठ इतना मधुर था कि उसे सुनकर नगरी के सब लोग, विशेषकर तरुण स्त्रियाँ इकट्ठी हो जातीं और मंत्रमुग्ध की तरह उनका गाना सुनतीं। यह खबर जब नगर के ब्राह्मणों के पास पहुँची तो उन्होंने राजा से जाकर कहा—"राजन्, इन चांडालपुत्रों ने नगरी के समस्त लोगों को भ्रष्ट कर दिया है, अतएव इनका नगरी में प्रवेश निषिद्ध कर दिया जाय।" राजा ने हुकुम निकाल दिया कि चित्र और संभूत नगरी में न आ पायें।

कुछ समय पश्चात् कौमुदी महोत्सव आया, और नगरी के लोग बड़ी धूमधाम से उत्सव की तैयारियाँ करने लगे। चित्र और संभूत राजाज्ञा की परवा न कर अपनी नगरी को लौटे, और दूसरों को गाते देखकर, वस्त्र से अपना मुँह ढककर, उन्होंने गाना आरंभ कर दिया। चांडालपुत्रों का गाना सुनते ही चारों ओर से लोग आ आकर एकत्रित होने लगे। जब मालूम हुआ कि ये वही मातंगकुमार हैं तो लोगों ने उन्हें लात, घूंसा, थप्पड़ आदि से बुरी तरह पीटकर बाहर निकाल दिया।

चांडालपुत्रों को बड़ा दुख हुआ। उन्होंने सोचा—"हमारे रूप, यौवन, कला-कौशल आदि को धिक्कार है जो चांडाल कुल में उत्पन्न होने के कारण हमारे सब गुणों पर पानी फिर गया! ऐसे जीने से तो मरना अच्छा है!" यह सोचकर दोनों भाई मरने का निश्चय कर दक्षिण दिशा की ओर चल दिये। चलते-चलते वे एक पहाड़ पर पहुँचे और वहाँ गिरकर प्राण त्याग करने का विचार करने लगे। संयोगवश उस पहाड़ पर एक मुनि ध्यानावस्था में बैठे थे। दोनों भाइयों ने जाकर उनकी वन्दना की। मुनि ने उन्हें धर्मोपदेश देकर धर्म में दीक्षित किया।

एक बार की बात है, चित्र और संभूत दोनों विहार करते-करते हस्तिनापुर पहुँचे, और नगर के बाहर उद्यान में ठहरे। संभूत साधू नगर में पारणा के लिये गया, और वहाँ उसे राजा के मंत्री नमुचि ने पहचान लिया। मंत्री ने सोचा, यह साधु मेरे विषय में दूसरों से कहेगा, अतएव उसने अपने आदमियों से उसे ख़ूब पिटवाया। संभूत को बहुत क्रोध आया और समस्त नगर को भस्म कर देने के लिये उसके शरीर में से तेजोलेश्या उद्भूत हुई। जब सनत्कुमार को इसका पता लगा तो वह अपने अन्तःपुर सहित संभूत साधु के पास क्षमा याचना के लिये आया। वंदना करते समय चक्रवर्ती की महारानी के कोमल केशपाश के स्पर्श का अनुभव कर संभूत का मन विचलित हो उठा।

चित्र साधू ने उसे अनेक दृष्टान्तों द्वारा उपदेश दिया, परन्तु संभूत के मन पर उसका कोई असर न हुआ। संभूत ने निदान (आगामी भव में भोग की इच्छा) किया—"यदि मेरे तप में कुछ बल हो तो मैं मरकर अगले भव में चक्रवर्ती बनूं।" फलतः संभूत अगले जन्म में ब्रह्मदत्त नामक चक्रवर्ती हुआ। वह अनेक भोगों का स्वामी हुआ, और रौद्र परिणाम से मरकर दुर्गति में गया।

६३—गंगा की उत्पत्ति

अयोध्या नगरी में इक्ष्वाकु वंशीय जितशत्रु राजा राज्य करता था। उसका पुत्र था चक्रवर्ती सगर। सगर के साठ हजार पुत्र थे, जिनमें जह्नुकुमार सब से बड़ा था। एक बार जह्नुकुमार अपने भाई-बंधुओं को साथ लेकर पृथ्वी-परिभ्रमण के लिये निकले, और अनेक ग्राम, नगर, नदी, तालाब, जंगल आदि को पार करते हुए अष्टापद पर्वत (कैलाश) पर पहुँचे। पर्वत की तलहटी में शिविर डालकर सब लोग पर्वत पर चढ़े, और वहाँ सब ने राजा भरत द्वारा निर्मित जिन चैत्यों के दर्शन किये। मंत्रियों से पूछने पर जह्नुकुमार को मालूम हुआ वे चैत्य चक्रवर्त्ती के बनवाये हुए हैं। इसी प्रकार के जिन चैत्य बनाने के लिये जब अन्य कोई सुन्दर पर्वत नहीं मिला, तो जह्नुकुमार ने सोचा कि अष्टापद पर्वत को ही क्यों न सुरक्षित रक्खा जाय?

दण्डरत्न लेकर सगर के पुत्रों ने पर्वत को चारों ओर से खोदना शुरू कर दिया। खोदते-खोदते दण्डरत्न पृथ्वी के अन्दर रहने वाले नागकुमारों के भवनों में जाकर टकराया, और इससे नागकुमार भयभीत होकर, अपनी रक्षा के लिये ज्वलनप्रभ नामक नागराज के पास पहुँचे। जब नागराज को सब हाल मालूम हुआ तो वह क्रोध में आकर सगर के पुत्रों के पास जा कर बोला—"तुम लोगों ने अपने दण्डरत्न से पृथ्वी को खोदकर नागलोक को क्यों कष्ट पहुँचाया है?" जह्नुकुमार ने नागराज को शांत करते हुए कहा—"हे नागराज, अपराध क्षमा कीजिये; हमारा अभिप्राय आपको जरा भी कष्ट पहुँचाने का न था। हम लोग अष्टापद की रक्षा के लिये उसके चारों ओर एक खाई खोदना चाहते हैं। आप आज्ञा दें तो खोद लें।" नागराज शांत होकर चला गया।

खाई तैयार हो जाने के बाद जह्नुकुमार ने सोचा कि बिना पानी के यह खाई किस काम की ? बस सगर के पुत्रों ने दण्डरत्न द्वारा गंगा को फोड़कर उसके पानी से खाई को भर दिया। परन्तु यह पानी नाग-भवनों तक पहुँच गया, और नाग और नागिनियों को डर के मारे भागते देख ज्वलनप्रभ क्रोध में आकर बोला—"अरे पापियो, मैंने तुम्हारा अपराध क्षमा कर दिया था, लेकिन अभी तुम्हारे होश ठिकाने नहीं आये। देखो, अब मैं तुम्हें तुम्हारी उद्दण्डता का मजा चखाऊँगा।" नागराज ने सगरपुत्रों के वध के लिये महाभयंकर जहरीली आँखों वाले बड़े-बड़े सर्प भेजे, जिनकी ओर दृष्टि डालते ही सगरपुत्र क्षण भर में जलकर खाक हो गये।

सगरपुत्रों के देहांत का समाचार जब शिविर में पहुँचा तो सर्वत्र हाहाकार मच गया। अन्तःपुर की रानियों ने अपने कड़े तथा हार तोड़ डाले और करुण विलाप करने लगीं। मंत्री ने सब को बहुत ढाढ़स बँधाया, और कहा कि अब शीघ्र ही महाराज के पास पहुँचकर यह समाचार उन्हें देना चाहिये। कुछ समय पश्चात् सब लोग अयोध्या पहुँच गये। परन्तु प्रश्न यह था कि महाराज को यह समाचार कैसे सुनाया जाय। जब किसी को कोई मार्ग न सूझा तो समस्त सामंत और मंत्रियों ने आग में जलकर मर जाने का निश्चय कर लिया।

चिताओं की तैयारियाँ हो रही थीं कि इतने में वहाँ एक ब्राह्मण आ पहुँचा। ब्राह्मण ने सब हाल सुनकर कहा कि आप लोग चिन्ता न करें, राजा को मैं यह समाचार दूंगा। ब्राह्मण एक अनाथ मरे हुए बालक को लेकर राजा के दरबार में पहुँचा, और करुण स्वर से विलाप करता हुआ जोर-जोर से कहने लगा—"हाय, मैं लुट गया!" राजा ने उसे बुलाकर पूछा तो वह बोला—"महाराज, मेरा इकलौता पुत्र था, उसे साँप ने डस लिया है; कृपा कर अब इसे जीवनदान दीजिये।" सगर चक्रवर्ती ने वैद्य को बुलाया और मृतक को निर्विष करने को कहा। वैद्य

ने उत्तर दिया—"महाराज, यदि किसी ऐसे कुल की राख मिल सके जिसमें आज तक किसी का मरण न हुआ हो तो मैं इस मुर्दे को जिला सकता हूँ।" ब्राह्मण राख माँगने चल दिया। उसने हजारों घर छान डाले, परन्तु उसे कहीं कोई ऐसा घर न मिला जहाँ किसी की मौत न हुई हो। राजा ने उस ब्राह्मण से कहा—"यदि ऐसी बात है तो फिर तुम पुत्र के मरने का शोक क्यों करते हो?" ब्राह्मण ने कहा—"महाराज, मैं यह जानता हूँ, परन्तु पुत्र के न रहने से मेरा वंश नष्ट हो जायगा। आप दुखियों के वत्सल हैं, प्रतापशाली हैं, अतएव मेरे पुत्र को जिलाकर मुझे पुत्र-भिक्षा दें।" राजा ने कहा—"मूर्ख, मरा हुआ आदमी कहीं वापिस आता है? अब तू शोक को छोड़कर धर्म-साधन पूर्वक अपना परलोक सुधार।" ब्राह्मण ने कहा—"महाराज, यदि वास्तव में ऐसी बात है तो आपको भी शोक छोड़कर धर्म-साधन करना चाहिये।" राजा ने घबरा कर पूछा, "मुझे कैसा शोक?" इस पर ब्राह्मण ने सगर को उसके पुत्रों के मरने के सब समाचार कह सुनाये, जिसे सुनकर राजा मूर्च्छित होकर सिंहासन से गिर पड़ा, और होश आने पर मुक्तकंठ से रो रोकर विलाप करने लगा।

एक बार की बात है, अष्टापद के आसपास रहनेवाले लोगों ने सगर चक्रवर्ती से आकर निवेदन किया—"महाराज, आपके पुत्रों ने अष्टापद की रक्षा के लिये जो पर्वत के चारों ओर खाई खोदकर उसे गंगा के जल से भरा था, सो वह जल खाई में से बह-बहकर आसपास के गाँवों में भर रहा है, जिससे सब लोगों को बड़ी तकलीफ़ हो रही है, अतएव कृपा करके किसी तरह उसे रुकवाइये।" सगर ने अपने पौत्र भगीरथ को बुलाकर कहा—"देखो, गंगा को समुद्र में ले जाकर लोगों का उपद्रव शान्त करो।" अपने पिता की आज्ञानुसार भगीरथ ने वहाँ पहुँचकर पहले तो पूजा आदि से नागराज को प्रसन्न किया, तत्पश्चात् उसकी आज्ञा से गंगा को समुद्र में ले जाकर लोगों के उपद्रव को दूर किया। भगीरथ ने बलि, पुष्प आदि

से नागों की पूजा की, इसलिये इस समय से नागबलि का प्रचार शुरू हुआ। जहाँ गंगा सागर में जाकर मिली, वह स्थान गंगासागर तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। गंगा नदी जह्नु द्वारा लाई गई थी, इसलिये वह जाह्नवी कहलाई, और भगीरथ उसे हटाकर सागर में ले गया, अतएव उसका नाम भागीरथी पड़ा।

६४–राजीमती की दृढ़ता

सौर्यपुर के अंधकवृष्णि राजा के दस दशार्ह पुत्रों में वसुदेव तथा समुद्रविजय मुख्य थे। वसुदेव के दो रानियाँ थीं—एक रोहिणी और दूसरी देवकी। पहली से बलदेव और दूसरी से कृष्ण का जन्म हुआ था। समुद्रविजय की रानी का नाम शिवा था, जिससे अरिष्टनेमि का जन्म हुआ था। जब अरिष्टनेमि आठ वर्ष के हुए तो कृष्ण द्वारा कंस के वध किये जाने पर जरासंध को यादवों के ऊपर बहुत क्रोध आया, और उसके भय से यादव लोग पश्चिम समुद्र तट पर स्थित द्वारका नगरी में जाकर रहने लगे। कुछ समय पश्चात् कृष्ण और बलदेव ने जरासंध का बध किया और वे आधे भारतवर्ष (भरतक्षेत्र) के स्वामी हो गये।

अरिष्टनेमि जब बड़े हुए तो एक बार वे खेलते-खेलते कृष्ण की आयुधशाला में पहुँचे, और वहाँ रक्खे हुए धनुष को उठाने लगे। आयुधपाल ने कहा, "कुमार, आप क्यों व्यर्थ ही इसे उठाने का प्रयत्न करते हैं? कृष्ण को छोड़कर अन्य कोई पुरुष इस धनुष को नहीं उठा सकता।" परन्तु अरिष्टनेमि ने आयुधपाल के कहने की कोई परवा न की, और उन्होंने बात की बात में धनुष को उठाकर उस पर बाण चढ़ा दिया, जिससे सारी पृथ्वी काँप उठी। तत्पश्चात् अरिष्टनेमि ने पांचजन्य शंख फूँका, जिससे समस्त संसार काँप उठा।

आयुधपाल ने तुरंत कृष्ण से जाकर कहा। कृष्ण ने सोचा कि जिसमें इतना बल है वह बड़ा होकर मेरा राज्य भी छीन सकता है, अतएव इसका कोई उपाय करना चाहिये। कृष्ण ने यह बात अपने भाई बलदेव से कही। बलदेव ने उत्तर दिया—"देखो, अरिष्टनेमि बाईसवें तीर्थंकर होनेवाले हैं, और तुम नौवें वासुदेव। अरिष्टनेमि बिना राज्य किये ही संसार

का त्याग कर दीक्षा ग्रहण करेंगे, अतएव डर की कोई बात नहीं।" परन्तु कृष्ण की शंका दूर न हुई।

एक बार की बात है नेमिकुमार और कृष्ण दोनों उद्यान में गये हुए थे। कृष्ण ने उनके साथ बाहुयुद्ध करना चाहा। नेमि ने अपनी बाईं भुजा फैला दी, और कहा कि यदि तुम इसे मोड़ दो तो तुम जीते। परन्तु कृष्ण उसे ज़रा भी न हिला सके।

नेमिकुमार अब युवा हो गये थे। समुद्रविजय आदि राजाओं ने कृष्ण से कहा कि देखो, नेमि सांसारिक विषयभोगों की ओर से उदासीन मालूम होते हैं, अतएव कोई ऐसा उपाय करो जिससे ये विषयों की ओर झुकें। कृष्ण ने रुक्मिणी, सत्यभामा आदि अपनी रानियों से यह बात कही। रानियों ने नेमि को नाना उपायों से लुभाने की चेष्टा की, परन्तु नेमि पर इसका कोई असर न हुआ।

कुछ समय बाद कृष्ण के बहुत कहने-सुनने पर नेमिकुमार ने विवाह की स्वीकृति दे दी। उग्रसेन राजा की कन्या राजीमती से उनके विवाह की बात पक्की हो गई, और विवाह की धूमधाम से तैयारियाँ होने लगीं। नेमिकुमार कृष्ण, बलदेव आदि को साथ लेकर हाथी पर चढ़कर विवाह के लिये आये। कहीं बाजे बज रहे थे, कहीं शंखध्वनि हो रही थी, कहीं मंगलगान गाये जा रहे थे और कहीं जय-जय शब्दों का नाद सुनाई दे रहा था। नेमिकुमार महाविभूति के साथ विवाहमंडप में पहुँचे। नेमि के सुन्दर रूप को देखकर राजीमती के हर्ष का पारावार न रहा।

इतने में नेमिकुमार के कानों में कहीं से करुण शब्द सुनाई पड़ा। पूछने पर उनके सारथी ने कहा—"महाराज, आपके विवाह की ख़ुशी में बाराती लोगों को मांस का भोजन खिलाया जायगा। यह शब्द बाड़े में बन्द पशुओं का है।" नेमिकुमार सोचने लगे—"इन निरपराध प्राणियों को मारकर खाने में कौन सा सुख है?" बस उनके हृदय-कपाट खुल गये, और उन्हें संसार से विरक्ति हो गई। उन्होंने सोचा—"संसार-

परिभ्रमण के कारण इस विवाह से मुझे क्या लेना है ?" उन्होंने एकदम अपना हाथी लौटा दिया। घर जाकर उन्होंने अपने माता-पिता की आज्ञापूर्वक दीक्षा ली, और साधु बनकर रैवतक पर्वत (गिरनार,) जूनागढ़ पर तप करने लगे।

उधर जब राजीमती को मालूम हुआ कि नेमिनाथ ने दीक्षा ग्रहण कर ली है, तो उसे अत्यन्त आघात पहुँचा। उसने बहुत विलाप किया परन्तु उसने सोचा कि ऐसा करने से काम न चलेगा। उसने अपने स्वामी के अनुगमन करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। नेमिनाथ के भाई रथनेमि को जब पता चला कि राजीमती भी दीक्षा की तैयारी कर रही हैं तो वे उसके पास जाकर उसे समझाने लगे—"भाभी, नेमि तो अब वीतराग हो गये हैं, अतएव उनकी आशा करना व्यर्थ है। क्यों न तुम मुझे स्वीकार कर लो ?" राजीमती ने कहा—"मैं नेमिनाथ की अनुगामिनी बनने का दृढ़ संकल्प कर चुकी हूँ, उससे मुझे कोई नहीं डिगा सकता।" एक दिन रथनेमि ने फिर वही प्रसंग छेड़ा। इस पर राजीमती ने उसके सामने खीर खाकर ऊपर से मदनफल खा लिया, जिससे उसे तुरंत वमन हो गया। इस वमन को राजीमती ने एक सोने के पात्रमें इकट्ठा कर उसे अपने देवर के सामने रखकर उसे भक्षण करने को कहा। उसने उत्तर दिया, "भाभी, भला वमन की हुई वस्तु मैं कैसे खा सकता हूँ ?" राजीमती ने पूछा, "क्या तुम इतना समझते हो ?" रथनेमि ने उत्तर दिया, "यह बात तो एक बालक भी जानता है ?" राजीमती ने कहा, "यदि ऐसी बात है तो फिर तुम मेरी कामना क्यों करते हो ? मैं भी तो परित्यक्ता हूँ !" तत्पश्चात् राजीमती ने रैवतक पर्वत के ऊपर जाकर भगवान् नेमिनाथ के पास दीक्षा ली।

कुछ समय बाद रथनेमि ने भी दीक्षा ग्रहण कर ली, और वे साधु होकर उसी पर्वत पर विहार करने लगे। एक बार की बात है, राजीमती अन्य साध्वियों के साथ रैवतक पर विहार करती थी। इतने में बड़े

ज़ोर की वर्षा हुई, और सब साध्वियाँ पास की गुफ़ाओं में चली गई। राजीमती भी एक सूनी गुफ़ा में आकर खड़ी हो गई। संयोगवश रथनेमि साधु भी उस गुफ़ा में खड़े तप कर रहे थे। अँधेरे में राजीमती ने उन्हें नहीं देखा, और वह वर्षा से भीगे हुए वस्त्र उतार कर सुखाने लगी। राजीमती को इस अवस्था में देखकर रथनेमि का हृदय एक बार फिर से कामोद्रेक से प्रकम्पित हो उठा, और उसने उस साध्वी से प्रेम की याचना की। परन्तु राजीमती का मन किंचित् भी डोलायमान न हुआ। वह स्वयं संयम में दृढ़ रही और नाना उपदेशों द्वारा रथनेमि को संयम में दृढ़ किया।